वाराहगृह्यसूत्र की विषयसूची।

॥ श्रीगणेशायनमः ॥

अथ वाराहगृह्यसूत्रम् ।

प्राङ्मुखमुदङ्मुखं वा सूतिकालयं कल्पयित्वा "ध्रुवं प्रपद्ये शुभं प्रपद्ये" इति काले प्रपादयेत् ॥१॥ "रेतो मूत्र"-मिति च्यावनीभ्यां दक्षिणकुक्षिमभिमृशेत् ॥ २ ॥ आवयेद्वा पुत्रं जातमन्वक्तं स्नातं न मातोपहन्यात् आमन्त्रप्रयोगात् ॥ ३ ॥ अग्नेरभ्याहितस्य परिसमूढस्य परिस्तीर्णस्य पश्चादहते वाससि कुमारं प्राक्शिरसमुत्तानं संवेश्य पालाशस्य मध्यमपर्णं प्रवेष्ट्य तेनास्य कर्णावाजपेत् ॥४। "भूस्त्वयि दधामी"ति दक्षिणे "भुवस्त्वयि दधामी"ति सव्ये "स्वस्त्वयि दधामी"ति दक्षिणे भूर्भुवः स्वस्त्वयि दधामी"ति सव्ये ॥ ५ ॥ अथैनमभिमन्त्रयेत्–"अश्मा भव परशुर्भव हिरण्यमस्तृतं भव ॥ ६ ॥ वेदो वै पुत्रनामासि स जीव शरदः शतम् । अङ्गादङ्गात्संभवसि हृदयादधिजायसे ॥७॥ आत्मा वै पुत्रनामासि स जीव शरदः शतमिति यत्र शेते तदभिमृशेत् ॥८॥ वेद ते भूमिहृदयं दिवि चन्द्रमसि श्रितम् ॥९॥ वेदामृतस्य देवानहं पुत्रमहं हृद" मित्याज्यं संस्कृत्य ब्राह्मणमामन्त्र्य समिधमाधायाघारावाघार्याज्यभागौ हुत्वा व्याहृतिभिश्चतस्र आज्याहुतीर्जु-

हुयात् ॥ १० ॥ जयाभ्यातानानां राष्ट्रभृतश्चैके ॥ ११ ॥ कांस्ये चमसे वाहुतिसंपातानवनीय तस्मिन्सुवर्णं संनिघृष्य व्याहृतिभिः कुमारं चतुः प्राशयेदत्यन्तमेके सुवर्णप्राशनमुदके निघृष्य आद्वादशवर्षताया "इषं पिन्वोर्जं पिन्वेति" स्तनौ प्रदापयेत् । १२ ॥ दक्षिणं पूर्वं सव्यं पश्चात् स्विष्टकृतं हुत्वा प्रायश्चित्ताहुतीश्च समिधमाधाय पर्युक्षति ॥ ॥ १३ ॥ एष कर्मान्तो बहिर्द्वारेऽग्निर्नित्यः ॥ १४ ॥ कण सर्षपयवानां होमः ॥ १५ ॥ व्याहृतिभिर्जुहुयात् ॥ १६ ॥ अप्रतिरथं जपेत् ॥ १७ ॥ "इन्द्रो भूतस्ये"ति षडर्चं च सूतिकालयं यथाकालं समन्तादुदकेन परिषिंचेत् ॥ १० ॥ इति वाराहगृह्यसूत्रे प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

भा० टी०—पूर्व मुंह या उत्तर मुंह का सूतिका घर जो बच्चे जनने के लिये गर्भवती स्त्री के लिये होता है तय्यार करावे । और जब प्रसव होने का निकटतम काल आजावे तब "ध्रुवं प्रपद्ये शुभं प्रपद्ये" मंत्र को पढ़ कर विधिपूर्वक गर्भिणी स्त्री को 'सूतिकालय' में प्रवेश करावे ॥ और जब स्त्री को प्रसवार्थ पेट में वेदना होने लगे तब "रेतो मूत्रमिति०" इत्यादि मंत्रों से स्त्री के पेट के दक्षिण भाग को स्पर्श करे । और जब सूतिका को सन्तान पैदा होजावे तो "पुत्र उत्पन्न हुआ" ऐसा सुनावे और जब तक जात कर्म सम्बन्धि क्रियायें मंत्र पूर्वक न हो जावें तब तक माता उस बच्चे को अपने गोद में न लेवे । बच्चे को स्नान करावे तो भले ही करादेवे परन्तु माता के गोद में उसे न देवे । जहां होम करना हो उस स्थान को साफ कर (पांचभू संस्कार करके) अग्निस्थापन कर उसके पश्चिम भाग में कुशा बिछाकर उस पर कुमार को—नये चीरे अखण्ड वस्त्र पर पूर्वशिर और उत्तान कर सुला कर ढाक के पत्तों में से बीच के पत्ते को लपेट कर उसका

एकछोर बच्चे के कान में एक अपने मुख में लगाके-"भूस्त्वमि०" इत्यादि मंत्र को दहिने कान में पढ़े और "भुवस्त्व०" मंत्र को बायें कानमें पढ़े, फिर "स्वस्त्वं०" मंत्र को दहिने कान में और भूर्भुवः० ॥ मंत्रको बांयें कान में पढ़े ॥ इसके अनन्तर इस कुमार को अभिमन्त्रण करं—"अश्माभव०" इत्यादि मंत्र पढ़ कर जहां कुमार शयन करता हो वहां-उसको स्पर्श करे ॥ "वेदते०" इत्यादि मंत्रको पढ कर आज्यका संस्कार कर ब्राह्मणों को निमन्त्रण देकर समिधा इकट्ठा कर घी का ढार दे । आज्यभाग की दो आहुती देकर व्याहृति मंत्रों से चार आहुती देवे । कोई २ आचार्य्य का मत है कि जयाभ्यातन और राष्ट्रभृत मंत्रों से भी होम करे ॥ और कांसे के कटोरे में या प्रणीता के समान चमस पात्र में आहुती सम्पात को लेकर उसमें सोने को घिस कर व्याहृति मंत्रों से कुमार को चार वार चटावे । कोई २ आचार्य्य कहते हैं कि अनेक वार चटावे । और सोने को पानी में घिसकर कुमार को १२ वर्ष की उमर तक चटावे ॥ और "इर्षं पिन्वा०" मंत्र को पढ़ कर कुमार को दोनों स्तन दूध पीने इस भांति देवे कि पहले दहिना स्तन पीछे बायां स्तन देवे ॥ अनन्तर स्विष्टकृत आहुती देकर प्रायश्चित्तकी आहुती करे और समिध डालकर इसका जलसे पर्य्युक्षण करे ॥ यह कर्मान्त विधि द्वार के बाहर नित्य अग्नि में करे । और कण, सरसो, और जव से होम करे ॥ व्याहृतियों से होम करे । "अप्रतिरथ" का जप करं । "इन्द्रो भूतस्य और षडर्च मंत्रों का भी जप करे । सूतिकालय को यथा समय-चारों ओर जल से सींचे ॥ १—१८ ॥ प्रथम खण्ड समाप्त हुआ ॥ १ ॥

एवमेव दशम्यां कृत्वा पिता माता च पुत्रस्य नाम दध्याताम् ॥ १ ॥ घोषवदाद्यन्तरन्तस्थं दीर्घाभिनिष्ठानान्तं कृतं न तद्धितं द्व्यक्षरं चतुरक्षरं वा त्यक्तपितृनामधेयान्नक्षत्रदेवतेष्टनामानो वा ॥ २ ॥ द्विनामा तु ब्राह्मणो नामैवं कन्याया अकारव्यवधानमाकारान्तमयुग्माक्षरं नदीनक्षत्र-

चन्द्रसूर्यपूषादेवदत्तरक्षितावर्जम् ॥ ३ ॥ नवनीतेन पाणी प्रलिप्य "सोमस्य त्वा द्युम्नेन" त्येनमभिमृशेत् ॥ ४ ॥ सर्वेषु कुमारकर्मसु आग्नेयः स्थालीपाकः प्रजापत्यो वा सर्वत्रानादेशेऽग्निः पुंसामर्यमा स्त्रीणाम् ॥ ५ ॥ संवत्सरं मातापितरौ न मांसमश्नीयाताम् ॥ ६ ॥ इति वाराहगृह्ये द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

जातकर्म से लेकर दशवें दिन पूर्वोक्त प्रकार विधि पूर्वक होम कृत्य करके पिता और माता अपने पुत्र का नाम करण संस्कार करे अर्थात् पुत्र का नाम धरे । जिस के नाम का आदि अक्षर घोषवत् (ग, घ, ङ, । ज, झ, ञ । ड, ढ, ण, । द, ध, न, । ब, भ, म, । और ह) ये अक्षर अन्तस्थ (य, र, ल, व) अक्षर नामके बीच में हों और विसर्जनीय (:) अन्तमें हों-नाम कृदन्त हो तद्धितान्त न हो-नाम दो या चार अक्षर का हो— और पुत्र के नाम के साथही पीछे पिता का नाम भी लगाया जाय, परन्तु अभिवादन में पिता के नाम को छोड़ देवे । जिस तिथि या नक्षत्र में पुत्र का जन्म हो उसके देवता सम्बन्धी या नक्षत्र सम्बन्धी नाम यश के लिये अच्छे हैं । परन्तु देवता और पिता का साक्षात् नाम न धरे ॥ दो नाम ब्राह्मण का अर्थात् पुत्र का धरे । परन्तु कन्या का केवल एक ही नाम हो । कन्या के नाम में अकार व्यवधान हो और अन्त में आ-कार और बेजोड़ वा विषम संख्यक (३, ५ आदि) अक्षर हों । नदी, नक्षत्र, चन्द्र, सूर्य्य, पूषा, देवदत्त-इन से रक्षिता नाम न धरे-और न इन के नामों से नाम धरे।

फिर धोये हुए हाथों में मक्खन लगाके अग्नि में तपा के और बच्चे को स्पर्श करने की आज्ञा ब्राह्मण से लेकर ॥ सोमस्य०" मंत्र को पढ़कर कुमार को स्पर्श करे । सब ही कुमार के कर्मों में "आग्नेय स्थालीपाक" या प्राजापत्य स्थाली पाक-करे । कुमार कर्मों में जहां २ अग्नि के नाम का पर्य्याय वाची कोई शब्द उपदिष्ट न हो वहां-कुमार के कर्मों में "अग्निः"

ग्रहण करना और कुमारी के कर्म्मों में "अर्यमा" समझना ॥ इसके अनन्तर कुमार के माता पिता एक वर्ष तक मांस न खावें ॥ १-६ ॥ दूसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥ २ ॥

पुत्रस्य जाते दन्ते यजेताग्निं गवाऽपशुना वा ॥ १ ॥ विप्रोषितः प्रत्येत्य पुत्रस्य मूर्धानं त्रिराजिघ्रेत्—"पशूनां त्वा हिंकारेणाभिजिघ्रामी"ति ॥ २ ॥ जातकर्मवद्धस्ताङ्गुलीं प्रवेष्ट्य तेनास्य कर्णावाजपेत् ॥ ३ ॥ अथैनमभिमन्त्रयते—"अश्मा भवे"ति "अग्निधन्वन्तरी" इति ॥ ४ ॥ पुत्रवच्छागमेषाभ्यामिष्ट्वा दीर्घाणां व्याहृतिभिः कुमारं चतुः ऽाशयेत् ॥ ५ ॥ "आयुर्दा देवेति" च कुमारकर्मणि शुक्ल उदगयने पुण्ये नक्षत्रे नवमीवर्जं सर्वे ऋतवो विवाहे माघचैत्रौ मासौ परिहाप्योत्तरं च नैवाद्यमन्वारम्भयित्वा हवनम् ॥ इति वाराहगृह्ये तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

पुत्र को दान्त निकल जाने पर पशु द्वारा अग्नि निमित्त यज्ञ करे या पशु रहित अन्नादि से ही करे। जब पिता प्रवास से घर पर आवे तो पुत्र के शिरमें अपना मुख लगाकर—"पशुनांत्वां०" मंत्र को पढ़ता हुआ तीन वार सूंघे। जात कर्म की भांति हाथ की अङ्गुली को कुमार के कान में, प्रवेश करा कर "अश्माभव०" मंत्र का जप करे । और पुत्र वाला-व्यक्ति छाग और भेड द्वारा यज्ञ कर व्याहृतियों को पढ़कर कुमार को चार वार यज्ञ से बचे मांस के बड़े टुकड़ों को चटावे। और "आयुर्द० मंत्र भी पढे। कुमार कर्म-में शुक्लपक्ष, उत्तरायण, पुण्य नक्षत्र, नवमी तिथिको छोड़कर सबही ऋतु श्रेष्ठ हैं। विवाह के लिये माघ, और चैत्र मास को छोड़कर---शेष महीनों में कृष्ण पक्ष को छोड़ कर-विवाह विहित है, परन्तु विवाह के आरम्भिक कार्य्य में हवन करे ॥ १-६ ॥ यह तीसरा खण्ड पूरा हुआ ॥ ३ ॥

तृतीयवर्षस्य जटाः कुर्वन्ति यथा वा कुलकल्पः ॥ ॥ १ ॥ अग्निमुपसमाधाय परिसमुह्य पर्युक्ष्य परिस्तीर्य दक्षिणतोऽग्नेर्ब्राह्मणमुपवेश्योत्तरत उदकपात्रं शमीशमकवत् ॥ २ ॥ अथैनमभिमन्त्रयते—"हिरण्यवर्णाः शुचय" इति चतसृभिः "या ओषधय" इत्यनुवाकेन, "शं नो देवीरभिष्ट"य इति, "शं न आपो धन्वन्या" इति द्वाभ्यामिति च ॥ ३ ॥ तासामुदकार्थान्कुर्वीत पर्युक्षणे अभ्युन्दने स्नापने च ॥ ४ ॥ आज्यं संस्कृत्य ब्राह्मणमामन्त्र्य समिधमाधायाघारावाघार्याज्यभागौ हुत्वा "अग्न आयूंषि पवस" इति सप्तभिः सप्त जुहुयात् ॥ ५ ॥ "आयुर्दा देवेति" च ये केशिनः प्रथमे सत्रमासत यैभिरावृतं यदिदं विराजति ॥ ६ ॥ तेभ्यो जुहोम्यायुषे दीर्घायुत्वाय स्वस्तय" इति व्याहृतिभिश्चोक्तः कर्मान्तः पूर्वेण ॥ ७ ॥ शीतेन वा उदकेनेत्युष्णेन वा उदकेनेति तप्ता इतराभिः संसृज्य "आर्द्रदानवस्थजीवदानवस्थोन्दतोषमावदे"त्यपोभिमन्त्र्य "अदितिः केशान् वपत्वाप उन्दन्तु जीवसे ॥ ८ ॥ दीर्घायुत्वाय स्वस्तय" इति दक्षिणं केशान्तमभ्युन्दति ॥ ९ ॥ "ओषधे त्रायस्वैनं "इति दक्षिणस्मिन्केशान्ते ऊर्ध्वाग्रं दर्भमन्तर्दधाति ॥ १० ॥ स्वधिते मैनं हिंसीरिति क्षुरेणाभिनिदधाति ॥ ११ ॥ येनावपत्सविता क्षुरेण सोमस्य राज्ञो वरुणस्य विद्वान् ॥ १२ ॥ तेन ब्रह्माणो वपतेदमस्यायुष्मानयं जरदष्टिर्यथासदमसाविति प्रवपति ॥ १३ ॥

दाक्षिणतो मातान्या वाऽविधवा आनडुहेन गोमयेन आभू-
मिगतान्केशान् परिगृह्णीयात् ॥ १४ ॥—मा ते केशान्
अनुगाद्वर्च एतत्तथा धाता दधातु ते ॥ १५ ॥ तुभ्यमिन्द्रो
वरुणो बृहस्पतिः सविता वर्च आदधु"रिति प्रवपतोऽनु-
मन्त्रयते ॥ १६ ॥ तेन धर्मेण पुनरपोभिमन्त्र्यापरं केशा-
न्तमभ्युन्द्यात् ॥१७॥ उत्तरं च । अन्यौ तु प्रवपनौ ॥१८॥
"येन पूषा बृहस्पतेरग्नेरिन्द्रस्य चायुषेऽवपत् ॥ १९ ॥
तेन ते वपाम्यायुषे दीर्घायुत्वाय स्वस्तय" इति पश्चात् ।
॥ २० ॥ येन भूयश्चरत्ययं ज्योक्च पश्यति सूर्यम् ॥२१॥
तेन ते वपाम्यायुषे दीर्घायुत्वाय सुश्लोक्याय सुवर्चस"
इत्युत्तरतः ॥ २२ ॥ यत्क्षुरेण वर्तयता सुपेशसा वसर्वपसि
केशान् शुन्धशिरो मुखं मास्यायुः प्रमोषीरिति लोहायसं
क्षुरं केशवापाय प्रयच्छति ॥ २३ ॥ यथार्थं केशयत्नान्
कुर्वन्ति—दक्षिणतः कपर्दो वसिष्ठानां उभयतोऽत्रिभार्गव
काश्यपानां पञ्चचूडाङ्गिरसां शिखिनोऽन्ये वाजिमेके मङ्ग-
लार्थम् । त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषं अगस्त्यस्य
त्र्यायुषम् । यद्देवानां त्र्यायुषं तन्मे अस्तु शतायुषमि"ति
शिरःप्रभृति परिगृह्य गोमयेन केशानुत्तरपूर्वस्यां गृहस्यामु
ष्यामन्तरा गेहात्पलदं निदध्यात्॥२४॥अतिरिक्ते वा वपने—
उप्त्वाय केशान्वरुणस्य राज्ञो बृहस्पतिः सविता विष्णुरिंद्रः
तेभ्यो निधानं महदन्वविन्दन्नन्तरा द्यावापृथिव्यो-
रवन्युरि"ति ॥ ॥२५॥ कर्त्रे वरं ददाति ॥ २६ ॥ पद्मगुणं

तिलपिशितं च केशवापाय प्रयच्छति ॥ २७ ॥ संवत्सरं माता नाम्लाय धारयेद्दोषाय नाश्नीयात् ॥ २८ ॥ लवणवर्जं तूष्णीम् ॥ २९ ॥ कन्याया आहुतिवर्जं विदुषो ब्राह्मणार्थसिद्धिं वाचयेत् ॥ ३० ॥ एवमुत्तरेषु ॥ ३१ ॥ इति वाराहगृह्ये चतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥

बालक के तीसरे वर्ष के अधिक भाग बीत जाने पर जब उत्तरायण शुक्लपक्ष हो, तब नवमी तिथि को छोड़कर चूड़ा करण करावे। या जिस कुल में जिस उमर में मुण्डन कराने की प्रथा चली आई हो और एक शिखा दक्षिण भाग में या उत्तर भाग में शिखा रखने की रीति हो उसी प्रकार या चूड़ा रखकर मुण्डन करावे मुण्डन संस्कार के लिये अग्नि को स्थापन कर वेदीका परिसमूहन, पर्युक्षण करके अग्नि के पास कुशाओं को बिछा-कर अग्नि के दक्षिण भाग में ब्राह्मण को बिठला कर उनके उत्तर भाग में जलपात्र और शमी की लकड़ी या उसके समान दूसरी यज्ञिय वृक्ष की लकड़ी रक्खे ॥ अनन्तर इसके, कुमार को ' हिरण्यवर्णाः०" इत्यादि चार ऋचाओं से "या ओषधय०" इस अनुवाक से "शंनोदेवी०" मंत्र से, "शंन" इन दो मन्त्रों से—यथा प्रयोजन जल से पर्य्युक्षण करे, भिगोये और स्नान करावे ॥ आज्य का संस्कार कर ब्राह्मण को निमन्त्रण देकर समिधाओं को डाल कर घीका धार देकर आज्यभाग की दो आहुती कर ' अग्न आयुंषि०" इत्यादि सातमन्त्रोंसे सात आहुती करे ॥ "आयुर्दा०" मंत्र से भी और "ये केशिनः०" इत्यादि मंत्र से और व्याहृतियों से भी--तब कर्म की समाप्ति करे जैसा पहिले कहा गया है। इसके पश्चात् शीतल जल, उष्ण जल अलग२ रक्खे और शीतल जल को गर्म में मिलाकर "आर्द्रदानवस्थ० इत्यादि मंत्र से जल को अभिमंत्रित करके "अदितिः०" मंत्र से कुमार के शिर के दहिने बालों के अन्त को भिगोवे। "ओषधे०" मंत्र से दहिने बालों के अन्त में बालों के बीच दाभ रक्खे ॥ स्वधिते मैनं हिंसी"० मंत्र पढ़के

दाभसहित बालों पर छूरा रक्खै ॥ फिर "येनावपत्०" इत्यादि तीन मन्त्र पढ़ २ कर तीन वार कुशा सहित बालों को काटे ॥ बालक के दहिने भाग में उसकी माता या अन्य कोई सधवास्त्री–कट कर भूमि पर गिरे बालों को बैल के गोबर पर लेती जावे । "माते केशान्०" इत्यादि मंत्र केशों को काटते समय पढ़ता जावे । उसी प्रकार फिर जल को अभिमन्त्रित कर बचे केशों को पूर्ववत् भिगोवे और केशों को भी इसी भांति काटे । "येन पूषा०" इत्यादि मंत्र से शिरके पीछे के भाग के केशों को काटे "येन भूयश्चरत्ययं०" मंत्र पढ़कर उत्तर भाग के केशों को काटे पुनः "यत्क्षुरेण०" मंत्र पढ़के लोहे के छूरे को नापित को दे देवे और अपनी कुलरीति अनुसार शिखा छोड़कर सब केशों को कटवा देवे । चोटी या चूड़ा रखने की भिन्न २ प्रथा वशिष्ट गोत्री दाईं ओर अत्रि भार्गव और काश्यप गोत्री दोनों ओर चूड़ा रखते हैं । आङ्गिरस गोत्री पांच चूड़ा रखते हैं अन्य गोत्र वाले शिखा मात्र रखते हैं और वाजसनेयी लोग एक ही चूड़ा रखते हैं ॥ त्र्यायुषं' इत्यादि मंत्र पढ़ कर सारे शिर को भिगो कर नाई उस्तरा को सारे शिर पर फेर देवे । तब बालों समेत गोबर को लपेट कर घर के उत्तर पूर्व दिशा में दूर पर जमीन में गाड़ देवे । यदि अतिरिक्त केश कट जावें तो 'उप· त्वाय०'' मंत्र का जप करे ॥ और पुरोहित को दक्षिणा देवे । नापित को केशर, गुड़, और कूटे हुए तिल देवे । साल भर तक बालक की माता खट्टा न खावे, क्रोध से भोजन न करे, लवण रहित भोजन करे । कन्या का संस्कार विना मंत्र के होगा; परन्तु हवन मन्त्र पूर्वक होंगे । विद्वान् ब्राह्मणों से० अर्थसिद्धि कहवावे–इसी प्रकार उत्तर कार्य्यों में भी ॥ सू० १–३१ ॥ इति चौथा खण्ड पूरा हुआ ॥ ४ ॥

गर्भाष्टमे ब्राह्मणमुपनयेत् ॥ १ ॥ षष्ठे सप्तमे पञ्चमे वा ॥२॥ ततो गर्भैकादशेषु क्षत्रियम् ॥ गर्भद्वादशेषु वैश्यम् ॥ ३ ॥ प्राक् षोडशाद्वर्षात् ब्राह्मणस्यापतिता सावित्री ॥ ॥ ४ ॥ आद्विंशात् क्षत्रियस्य ॥५॥ आचतुर्विंशाद्वैश्यस्य ॥

॥ ६ ॥ अत ऊर्ध्वं पतितसावित्रीका भवन्ति ॥ ७ ॥ नैनान्याजयेयुः ॥ "नाध्यापयेयु"र्न विवहेयुः ॥८॥ अभ्यन्तरं जटाकरणं बहिरुपनयनमुक्तोऽग्निसंस्कारः ॥ ९ ॥ ब्राह्मणस्य कुमारं पर्युषिनं स्नातमभ्यक्तशिरसमुपस्पर्शनकल्पेनोपस्पृष्टमग्नेर्दक्षिणतोऽवस्थाप्य "दधिक्राव्णो अकारिषमि"ति कुमारं दधि त्रिः प्राशयेत् ॥१०॥ "इयं दुरुक्तात्परिबाधमाना वरुणं पवित्रं पुनती न आगात् ॥ ११ ॥ प्राणापानाभ्यां बलमाभजन्ती शिवा देवी सुभगा मेखलेयम् ॥ १२ ॥ ऋतस्य गोप्त्री तपसश्चरित्री घ्नती रक्षः सहमाना अरातीः ॥ १३ ॥ सा मा समन्तमनुपर्येहि भद्रे धर्त्तारस्ते सुभगे मेखले मारिषामे" ति मौञ्जीं त्रिगुणां त्रिःपरिवीतां मेखलामाबध्नीत मौर्वीं धनुर्ज्यां क्षत्रियस्य शार्णीं वैश्यस्य ॥ १४ ॥ उपवीतमसि यज्ञस्य त्वोपवीतेनोपव्ययामी"ति यज्ञोपवीतम् ॥ १५ ॥ या अकृन्तन्या अतन्वन्यावन्या वाहरन् ॥ १६ ॥ याश्चाग्न्या देव्योन्तानभितो ततन्था ॥ १७ ॥ तास्त्वा देव्यो जरसे संव्ययन्त्वायुष्मन्निदं परिधत्स्व वासः ॥ १८ ॥ परिधत्त वर्चः शतायुषं दीर्घमायुः ॥ १९ ॥ शतं च जीव शरदः पुरूचीः सूनिचाय्यो विभजा यजीयान्" ॥ २० ॥ इत्यहतं वास आच्छाद्य—"मित्रस्य चक्षुर्धरुणं बलीयस्तेजो यशःश्रीस्थविरं समिद्धम् ॥ २१ ॥ आनाहनस्यं वसनं जरिष्णुं परीदं वाज्यजिनं दधेह"मिति कृष्णाजिनं च ॥ २२ ॥

आज्यं संस्कृत्य ब्राह्मणमामन्त्र्य समिधमाधायाघारावा-
घार्याज्यभागौ हुत्वाष्टौ जटाकरणीयान् जुहुयात् ॥ २३ ॥
व्याहृतिभिश्चोक्तः कर्मान्तः पूर्वेण ॥ २४ ॥ "कालाय वां
गोत्राय वां मैत्राय वां मैत्राय वामन्नाद्याय वां अवने-
निजेमी"त्युदकेनाञ्जलिं पूरयित्वा "सुकृताय वामि" ति
पाणी प्रक्षाल्य "इदमहं दुर्यमन्यानि प्लावयामो"त्याचम्य
निष्ठीवति ॥ २५ ॥ भ्रातृव्याणां सपत्नानामहं भूयास-
मि"ति द्वितीयम् ॥ २६ ॥ प्रातर्जितं भगमुग्रं हुवेम वयं
पुत्रमदितेर्यो विधर्ता ॥ २७ ॥ आद्रश्चिद्यन्मन्यमानस्तिर-
श्चिद्राजा चिद्यन्भगं भक्षीमहीत्याहे" त्यादित्यमुपतिष्ठेत
॥ २८ ॥ ब्रह्मचर्यमुपागामुपमाह्वयस्वेति" ब्रूयात् ॥ २९ ॥
एहि ब्रह्मोपेहि ब्रह्म ब्रह्म त्वा संब्रह्म सन्तमुपनयाम्यह-
मसा" विति ॥ ३० ॥ अथास्याभिवादनीयं नाम गृह्णाति
॥ ३१ ॥ "देवस्य त्वेति" हस्तं गृह्णाम्यहमसावि"त्यस्य
हस्तं दक्षिणेन दक्षिणमुत्तानमभि वाङ्गुष्ठमभि वा लो-
मानि गृह्णीयात् ॥ ३२ ॥ ममेवान्वे तु ते मनो मामेवा-
ऽपि त्वमन्विहि ॥ ३३ ॥ अग्नौ घृतमिव दीप्यतां हृदयं
तव यन्मयि" ॥ ३४ ॥ इत्येनं संप्रेक्षमाणं समीक्षते ।
पृष्ठतोऽस्य पाणिमन्वाहृत्य हृदयदेशमन्वारभ्य जपति
"प्राणानां ग्रन्थिरसि स ते मा विस्रंसदिति" ॥ ३५ ॥
ब्रह्मणो ग्रन्थिरसि" इति नाभिदेशं ॥ ३६ ॥ गणानां
त्वा गणपतिं हवामहे कविं कवीनामुपमश्रवस्तमम् ॥ ३७ ॥

ज्येष्ठराजं ब्रह्मणां ब्रह्मणस्पत आ नः शृण्वन्नूतिभिः सीद सादनम्" इति प्रदक्षिणमग्निं परिणयेत् ॥ ३८ ॥ पश्चादग्नेः दर्भेषूपविशति दक्षिणतश्च ब्रह्मचारी—"अधीहि भोः" ॥३९॥ इत्युपविश्य जपति ॥ ४० ॥ प्रभुज्य दक्षिणं जानुं पाणी संधाय दर्भहस्ता "वोमि"त्युक्त्वा व्याहृतिभिः सावित्रीं चानुब्रूयात् ॥४१॥ एवं काण्डानुवचनेषु ॥ ४२ ॥ तत्सवितुर्वरेण्यमि"ति गायत्रीं ब्राह्मणाय, "देवो याति सविता सुरत्न" इति त्रिष्टुभं क्षत्रियाय, "युंजते मन" इति जगतीं वैश्याय पच्छोऽर्धर्चशः सर्वामन्ततः ॥ ४३ ॥ पालाशं दण्डं ब्राह्मणाय प्रयच्छति नैयग्रोधं क्षत्रियाय आश्वत्थं वैश्याय ॥ ४४ ॥ सुश्रवः सुश्रवसं मां कुरु यथा त्वं सुश्रवः सुश्रवा अस्येवमहं सुश्रवः सुश्रवा भूयासं ॥ ४५ ॥ यथा त्वं देवानां वेदस्य निधिगोपोऽस्येवमहं मनुष्याणां ब्रह्मणो निधिगोपो भूयासमिति दण्डं प्रतिगृह्णाति ॥ ४६ ॥ ऊर्ध्वकपालो ब्राह्मणस्य कमण्डलुः परिमण्डलः क्षत्रियस्य निचलकलो वैश्यस्य ॥ ४७ ॥ "इमा आपः प्रभराम्ययक्ष्माय यक्ष्मचातनीः ॥ ४८ ॥ ऋतेनापः प्रभराम्यमृतेन सहायुषा" ॥ ४९ ॥ इति "प्रतिगृह्णा"मीति प्रतिगृह्य भैक्ष्यचर्यं चरेत् ॥ ५० ॥ 'ॐ भवति भिक्षां देही'ति ब्राह्मणः ॥ ५१ ॥ 'भवतिमध्यां' क्षत्रियः ॥ ५२ ॥ भवत्यन्तां वैश्यः ॥ ५३ ॥ चतस्रष्षडष्टौ वाऽविधवा अप्रत्याख्यायिन्यो मातरं प्रथममेके

॥ ५४ ॥ गुरवे निवेद्य वाग्यतः प्राग्ग्रामात् सन्ध्यामुपास्ते ॥ ५५ ॥ तिष्ठन् पूर्वां सावित्रीं त्रिरधीत्य "अध्वनामध्वपते श्रैष्ठ्यः स्वस्त्यस्याध्वनः पारमशीय" ॥५६॥ तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् ॥ ५७ ॥ पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतं शृणुयाम शरदः शतम् ॥ ५८ ॥ प्रब्रवाम शरदः शतं अदीनाः स्याम शरदः शतम् ॥५९॥ भूयश्च शरदः शतात् ॥ ६० ॥ या मेधा अप्सरस्सु गन्धर्वेषु च यन्मनः ॥ ६१ ॥ दैवी या मानुषी मेधा सा मा माविशतामिहैवे"ति प्रत्येत्याग्निं परिचरेत् ॥ ६२ ॥ इमं स्तोममर्हत इति परिसमूहेत् ॥ ६३ ॥ एधोस्येधिषीमही" ति समिधमादधाति ॥ ६४ ॥ समिदसि समेधिषीमही" ति द्वितीयम् ॥ "आपो अद्यान्वचारिषमि"त्युपतिष्ठते ॥ ६५ ॥ "मा संसृज वर्चसेति" मुखं परिमृजीत "यदग्ने तपसा तपो ब्रह्मचर्यमुपेयमसि ॥ ६६ ॥ प्रिया ऋतस्य भूयासमायुष्मन्तः सुमेधसः ॥ ६७ ॥ अग्ने समिधमहारिषं बृहते जातवेदसे ॥ ६८ ॥ स मे श्रद्धां च मेधां च जातवेदाः प्रयच्छतु स्वाहे"ति समिधमादधाति ॥ ६९ ॥ तेजसा मा समङ्ग्धि वर्चसा मा समङ्ग्धि ब्रह्मवर्चसेन मा समङ्ग्धि" इति मुखं परिमृजीत ॥ ७० ॥ आयुर्दा अग्नेऽसी"ति च यथारूपं गात्राणि संमृशति "इह धृतिरिति" पर्यायैः अंसग्रीवाश्च त्रिरालभ्य "ऋचं नो धेही" ति ललाटमभिमृशेत् ॥ ७१ ॥ आद्यन्तयोः पर्युक्षणम् ।

गुरवे ब्रह्मणे च वरमुत्तरासङ्गं च ददाति ॥ ७२ ॥ द्वाद-शरात्रमक्षारलवणमाशंदक्षारमेके ॥ ७३ ॥ व्युष्टे द्वादश-रात्रे षड्रात्रे वा ग्रामात्प्राचीं वोदीचीं वा दिशमुपनिष्क्रम्य पश्चात्पालाशस्य यज्ञियस्य वा वृक्षस्य सावित्रेण स्थाली-पाकेनेष्ट्वा जयप्रभृतिभ्यश्चाज्यस्य पुरस्तात्स्विष्टकृतो मेखलां दण्डं चाप्सु प्रास्येत् ॥ ७४ ॥ तत्रैव हविश्शेषं भुंजीतेति श्रुतिः ॥ ७५ ॥ इति वाराहगृह्ये पञ्चमः खण्डः ॥

गर्भ से या जन्म से जब ब्राह्मण का बालक आठ वर्ष का हो तो उसका उपनयन (वेद पढ़ने के लिये गुरु के पास भेजे) संस्कार करे ॥ या छठवें सातवें या पांचवें वर्ष में उपनयन करे ॥ इसके पश्चात् क्षत्रिय वर्ण के बालक का ग्यारहवें वर्ष में और वैश्य के बालक का बारहवें वर्ष में उपनयन करे ॥ यदि कारण वश विहित समय पर उपनयन न कर सके तो ब्राह्मण के बालक को १६ वें वर्ष तक उपनयन करने का अधिकार रहता है, इसी प्रकार क्षत्रिय को २२ वे वर्ष तक और वैश्य को २४ वें वर्ष तक ॥ इसके पश्चात् ब्राह्मण को १७ वें से, क्षत्रिय को २३ वें से और वैश्य को २५ वें वर्ष से उपनयन करने का अधिकार नहीं रहता है और समाज बे जनेऊ का होने से प्रत्येक वर्ण पतित सावित्रीक हो जाते हैं। ये पतित ब्राह्मणादिकों का यज्ञ न करावे न इनको वेदादि पढ़ावे और न इनसे विवाह सम्बन्ध करे ॥

उपनयन संस्कार के भीतर जो चूड़ाकरण का प्रसङ्ग आया है यह विषय इसके पहिले व अलग कहा जा चुका है। शिर मुड़ाये हुए ब्राह्मण कुमार को स्नान कराकर शिर में मक्खन आदि लगा के उपस्पर्शन की प्रक्रिया से उपस्पर्शन कर अग्नि के दक्षिण भाग में बैठाकर "दधिक्राव्णो०" मंत्र से कुमार को तीन वार दधि चटावे। इसके पश्चात् "इयं दुरुक्तात्परि०" इत्यादि मंत्र पढ़ कर मुंज की मेखला को कुमार के कटि में तीन वार लपेटे। इस तीसरी लपेट में अपने २ प्रवर संख्यानुसार तीन या पांच या सात गांठे

देकर बांध देवे। क्षत्रिय बालक के लिये मेखला गोहा या तांत की हो और वैश्य के लिये शरण की करे। फिर "उपवीतमसि०" मंत्र आचार्य्य बालक से पढ़वा कर उसको पहना देवे। इसके पश्चात् "या अकृन्तन्या०" इत्यादि मंत्र पढ़ कर चीरदार नया वस्त्र बालक को "परिधत्स्ववासः"। ऐसा कह कर पहनावे। और "मित्रस्य०" मंत्र पढ़कर कृष्णसार मृग के चर्म को दुपट्टे की जगह धारण करे। तब आज्य का संस्कार कर ब्राह्मण को निमन्त्रण देकर समिधा को डालकर आधार की आहुती देकर आज्य भाग की दो आहुतियां,चूड़ाकरण की आठ आहुतियां देवे। और व्याहृतियों से होम कर कर्म की समाप्ति कर देवे, जैसा पहिले कहा गया है। तब"काला० य वां०"इत्यादि मंत्र पढ़ कर अञ्जलिमें जल भर कर "सुकृताय०"मंत्रपढ़कर दोनों हाथों को धोवे। "इदमहं०" मंत्र पढ़ कर आचमन करके थूके (कुल्ला करे) और "भ्रातृव्याणां०" मंत्र से दूसरी बार आचमन करे। इसके पश्चात् "प्रानर्जितं०" मन्त्र पढ़कर सूर्य्य भगवान् का उपस्थान करे। तब कुमार "ब्रह्मचर्य०" पढ़े, इसके उत्तर में आचार्य बोलें-"एहि ब्रह्मोपेहि०" इत्यादि। तब आचार्य-बालक के अभिवादनीय नाम को बोल कर "देवस्यत्वेति०" मंत्र पढ़ते हुए बालक के दहिने हाथ को पकड़े और (असौ) पद के स्थान में बालक का नाम (हे देवदत्त जैसे) बोले। बालक के हाथ को इस भांति पकड़े कि-शिष्य का मुंह पूर्व की ओर आचार्य का पश्चिम की ओर हो। शिष्य बैठा हो, आचार्य खड़े हों, शिष्य का हाथ नीचा और खाली हो— ऐसे शिष्य के दहिने हाथ को किसी माङ्गलिक पदार्थ को अपने दहिने हाथ से आचार्य्य पकड़े और "ममेवान्वतु०" इत्यादि मंत्र पढ़े। यों शिष्य आचार्य्य को देखता रहे और आचार्य्य शिष्य को देखें और कुमार के दायें कंधे पर से अपना दहिना हाथ ले जाकर उसके हृदय को स्पर्श करते हुए-"प्राणानां०" मंत्र बोले। "ब्रह्मणो०" पढ़ कर उस की नाभि छूवे। फिर "गणानां०" इत्यादि पढ़कर अग्निकी प्रदक्षिणा क्रम से परिक्रमा करावे और अग्नि के पश्चिम भाग में कुश पर आचार्य बैठें और शिष्य को अपने दहिने भाग में बिठलावें और ब्रह्मचारी बैठ कर "अधीहि भोः०"-का जप

करे और दहिने जानु को भूमि पर टेक कर और दोनों हाथ इकट्ठा कर कुश लेकर "ओम्" कह कर व्याहृतियों के साथ सावित्री को कहे। इसी प्रकार काराडानुवचन क्रम से कहे। "तत्सवितुर्वरेण्यम्०" गायत्री को ब्राह्मण के लिये उपदेश देवे। "देवोयाति०" इत्यादि त्रिष्टुभ को क्षत्रिय के लिये "युंजतेमन०" जगती को वैश्य के लिये-इस क्रम से उपदेश करे कि पहिले पद २ आधी आधी ऋचा पुनः पूरी ऋचा और अन्त में पूरी गायत्री आदि का उपदेश करे। इसके पश्चात् ब्राह्मण के लिये पलाश का दण्ड, क्षत्रियके लिये वटवृक्षका दण्ड और वैश्यके लिये पीपर वृक्षका दण्ड होना चाहिये। "सुश्रवः०" इत्यादि मंत्रों को पढ़ कर ब्रह्मचारीको दण्ड देवे देने चाहिये। ब्राह्मणका दण्ड शिखाके केशों तक ऊंचा, क्षत्रियका दण्ड मस्तक तक ऊंचा और वैश्यका दण्ड नासिका तक ऊंचा, होना चाहिये। "इमा आपः०" इत्यादि मंत्र पढ़कर जल अपने शरीर पर छिड़के और भिक्षा मांगे इसका क्रम "ॐ भवति भिक्षां देहि०" ब्राह्मण बालक कहे और "भिक्षां भवति देहि०"-क्षत्रिय कहे। और 'भिक्षां देहि भवति०" वैश्य कहे। चार छः या आठ सधवा स्त्रियों से भिक्षा मांगे-परन्तु ऐसी स्त्रियां हों जो भिक्षा मांगने पर देने से इनकार न करें। उन में से पहिले अपनी माता से भिक्षा मांगे-ऐसा कोई २ आचार्य कहते हैं। भिक्षा लाकर गुरु को निवेदन करके ग्राम से पूर्व भाग में चुपचाप रहे, सन्ध्योपासन करे और प्रातः काल तीन वार सावित्री को पढ़कर "अध्वनाम०" इत्यादि मंत्र पढ़कर-तब अग्नि में समिधा डाले। "इमं०" मंत्र से परिसमूहन करे और "एधोस्येधि०" मंत्र से अग्नि में समिधा डाले "समिदसि०" मंत्र पढ़कर दूसरी समिधा डाले "आपो अद्यान्व०" मंत्र से उपस्थान करे। "मा संसृज०" मंत्र पढ़ कर अपने मुख पर हाथ फेर कर मार्जन करे। "यदग्ने०" इत्यादि "स्वाहा" तक पढ़कर समिधा को डाले। और "तेजसा०" इत्यादि मंत्र पढ़कर मुख का मार्जन करे। "आयुर्दा०" इत्यादि मंत्र पढ़कर शरीर के सब अङ्गों को स्पर्श करे। "इह धृतिः०" इत्यादि इस के पर्यायवाची-अंस, ग्रीवा को तीन वार स्पर्श करे और "ऋचं०" इत्यादि मंत्र से ललाट को स्पर्श करे।

आरम्भ और समाप्ति में जल छिड़के । गुरु और ब्राह्मण को दक्षिणा देवे । बारह रात्रि तक अक्षार लवण भोजन करे—कोई आचार्य अक्षार पदार्थ खाने को कहते हैं । फिर तेरहवें दिन प्रातः काल या छः रात के पश्चात् गांव से पूर्व दिशा या उत्तर दिशा में जाकर पलाश या यज्ञियवृक्ष के पश्चिमभाग में सावित्री स्थाली पाक से यज्ञ कर जय प्रभृति मंत्रों से आज्य की आहुती कर और स्विष्टकृत की आहुती कर मेखला और दण्ड को जल में छोड़ देवे और वहीं हवि का बचा अंश खाजावे—ऐसा श्रुति कहती है ॥ सू० १—७५ ॥ यह पञ्चम खण्ड पूरा हुआ ॥ ५ ॥

उपनयनप्रभृति व्रतचारी स्यात् ॥ १ ॥ उपनयने व्रतादेशा व्याख्याताः ॥ २ ॥ मार्गवासाः ॥ ३ ॥ संहृत-केशः ॥ ४ ॥ भैक्षाचर्यवृत्तिः ॥ ५ ॥ सशल्कदण्डः ॥ ६ ॥ ससमौञ्जीं मेखलां धारयेत् ॥ ७ ॥ आचार्यस्याप्रतिकूलः सर्वकारी ॥ ८ ॥ यदेनमुपेयात् तदस्मै दद्यात् ॥ ९ ॥ बहूनां येन संयुक्तः ॥ १० ॥ नास्य शय्यामाविशेत् ॥ ११ ॥ न रथमारोहेत् ॥ १२ ॥ न संविशेत् ॥ १३ ॥ न विहारार्थो जल्पेत् ॥ १४ ॥ न रुच्यर्थं कंचन धारयेत् ॥ १५ ॥ स-र्वाणि सांस्पर्शकानि स्त्रीभ्यो वर्जयेत् ॥ १६ ॥ न स्नाया-दण्डवत् ॥ १७ ॥ नोदकमभ्युपेयात् ॥ १८ ॥ न दिवा स्वपेत् ॥ १९ ॥ त्रैविद्यकं ब्रह्मचर्यं चरेत् ॥ २० ॥ इन्द्रि-यसंयतः ॥ २१ ॥ सायं प्रातर्भैक्षाचर्यवृत्तिः ॥ २२ ॥ सायं प्रातरग्निं परिचरेत् ॥ २३ ॥ अधःशय्या ॥ २४ ॥ आचार्याधीनवृत्तिः ॥ २५ ॥ तन्निसर्गादशनम् ॥ २६ ॥ अयाचितमलवणम् ॥ २७ ॥ वाग्यतोऽश्नीयात् ॥ २८ ॥

मधुमांसे वर्जयेत् ॥ २९ ॥ आच्छिन्नवस्त्रां विवृतां स्त्रिय न पश्येत् ॥ ३० ॥ यौपस्य वृक्षस्य दण्डी स्यात् ॥ ३१ ॥ नानेन प्रहरेद्द्रवे न ब्राह्मणाय ॥३२॥ न नृत्यगीते गच्छेत् ॥ ३३ ॥ न चैने कुर्यात् ॥ ३४ ॥ नावलिखेत् ॥ ३५ ॥ शिखाजटः सर्वजटो वा स्यात् ॥ ३६ ॥ शाणं क्षौममजिनं वासः ॥ ३७ ॥ रक्तं वसनम् ॥ ३८ ॥ कम्बलमैणेयं ब्राह्मणस्य ॥३९॥ रौरवं क्षत्रियस्य ॥४०॥ आजं वैश्यस्य ॥४१॥ एतेन धर्मेण द्वादशवर्षाण्येकवेदे ब्रह्मचर्यं चरेत् ॥ ४२ ॥ चतुर्विंशति द्वयोः षट्त्रिंशस्त्रयाणाम् ॥४३॥ अष्टचत्वारिंशत्सर्वेषाम् ॥ ४४ ॥ यावद्ग्रहणं वा ॥ ४५ ॥ मलजुवेलः कृशः स्नात्वा स सर्वं लभेत यत्किंचिन्मनसेप्सितम् ॥ ४६ ॥ इत्येतेन धर्मेण साध्वधीतो ॥ ४७ ॥ मन्त्रब्राह्मणान्यधीत्य कल्पं मीमांसां च याज्ञिकोऽधीत्य वक्त्रं पदं स्मृतिं चैच्छिकः ॥ ४८ ॥ तौ स्नातकौ श्रोत्रियोन्यो वेदपाठी ॥४९॥ न तस्य स्नानं उपविश्याचमनं विधीयते ॥५०॥ अन्तर्जानु बाहू कृत्वा त्रिराचामेत् ॥ ५१ ॥ द्विःपरिमृजेत् ॥ ५२ ॥ खानि चोपस्पृशेच्छीर्षण्यानि ॥५३॥ इति वाराहगृह्ये षष्ठः खण्डः ॥ ६ ॥

यज्ञोपवीत संस्कार होने से लेकर आगे कहे नियमों का पालन करने वाले का नाम ब्रह्मचारी है। उपनयन के प्रकरण में नियमों के पालन के आदेशों का व्याख्यान हो चुका है। मृगचर्म का वस्त्र दुपट्टे के स्थान में ओढ़े, सब बाल रक्खे या सब कटावे। भिक्षा मांग कर या आचार्य से भोजन रूप जीविका करे। वक्कल सहित दण्ड धारण करे। सात मुंजों की

मेखला कटिभाग में धारण करे। आचार्य की आज्ञा से सब कार्य करे। जो कुछ धनादि वस्तु ब्रह्मचारी को मिले उसको गुरु को देवे। यदि अनेक गुरु हों तो जिसके पास विशेष रहता हो उसी को धनादि देवे। गुरु के बिछावन या आसन पर उन के सामने या पीछे में न बैठे। सूत आदि के अच्छे२ वस्त्र गुरु के समान न धारण करे। रथ, घोड़ा, हाथी आदि पर बहुत न चढ़े। काम भोग विषयक स्त्रियों की चर्चा या धन सुवर्ण आदि की चर्चा न करे न सुने। चित्त को प्रसन्न करने के लिये या अपनी शोभा बढ़ाने के लिये इतर, चन्दन, पुष्प माला आदि कुछ न धारण करे। स्त्री का वर्णन काव्य सुनना स्त्री के स्तन आदि अङ्गों को देखना, छूना, खुजलाना, उबटन करना आदि और गाना, बजाना आदि सब कामों को सर्वथा छोड़ देवे। यदि स्नान भी करे तो शरीर को मल २ कर न धोवे और उबटन न करे किन्तु लकड़ी के समान जल पर तैरता रहे। नित्य कामना से स्नान न करे, जलाशय में पैठ कर स्नान न करे। किन्तु जलाशय के समीप आचमन आदि करने के लिये जाया करे। दिन को सोया न करे। तीन वेदों के पढ़ने तक ब्रह्मचर्य से रहे। इन्द्रियों को दमन पूर्वक रहे। सायं और प्रातःकाल भिक्षा वृत्ति से निर्वाह करे। सायं और प्रातः दोनों समय अग्निहोत्र करे। भूमि पर शयन करे। विना मांगे प्राप्त पदार्थ और लवण रहित मौन होकर भोजन करे। आचार्य की आज्ञा में रहे। गुरु की आज्ञा से भोजन करे। शहत और मांस न खावे। स्त्री के शरीर पर से बलात्कार कपड़े हटा कर या नंगी स्त्री को न देखे। यज्ञिय वृक्ष का दण्ड ग्रहण करे और उस दण्ड से गौ को न मारे और न ब्राह्मण ही को। नाच और गाने को देखने सुनने न जावे और न स्वयं नाचे या गावे। भूमि पर न खाय, किसी पदार्थ से न लिखे। केवल शिखा मात्र रक्खे या सम्पूर्ण शिर में जटा रक्खे। शण, रेशम, मृगचर्म का वस्त्र व्यवहार करे। लाल रंग का वस्त्र रक्खे। ब्राह्मण ब्रह्मचारी मृगछाला का कम्बल रक्खे। रुरु मृग का चर्म क्षत्रिय रक्खे। बकरे के ऊन का वस्त्र वैश्य रक्खे। इन नियमों से बारह वर्ष तक एक वेद के पढ़ने में वर्तता हुआ ब्रह्मचारी रहे॥ चौबीस वर्ष तक दो वेदों

के और ३६ वर्ष तक तीन वेदों के ४८ वर्ष तक चारो वेदों के पढ़ने में ब्रह्मचारी रहे । या जितने समय तक वेदों को पढ़े उतने समय तक उक्त नियमानुसार रहे । ब्रह्मचर्यव्रत धारण करता है और मलीन शरीर निर्बल पतला कृश हुआ समावर्त्तन स्नान करता है वह जो २ मन से चाहता है उस सब को प्राप्त कर लेता है । इस उक्त नियम से जो कुछ पढ़ता है-वह पढ़ना ठीक सुफल होता है । वेद के मन्त्रभाग और ब्राह्मण भागों को पढ़ कर कल्पसूत्र और पूर्वमीमांसा को पढ़ कर व्याकरण को पदपाठ, धर्म्मशास्त्र का पढ़ना इच्छा पर निर्भर है । ब्रह्मचारी दो प्रकार के होते हैं-एक नैष्ठिक दूसरा वेद पढ़ने पर समावर्त्तन करने वाला-इनमें से नैष्ठिक ब्रह्मचारी आजीवन ब्रह्मचर्य्यव्रत करने वाला होने से उसको समावर्त्तन स्नान न करना चाहिये । नैष्ठिक ब्रह्मचारी आचमन करे । दोनों जंघों के बीच दोनों हाथ रख के प्रतिदिन तीन वार आचमन करे और दो वार शरीर का मार्जन करे और शिर में स्थित ज्ञानेन्द्रियों का स्पर्श किया करे ॥ सूत्र १—५३ ॥ यह छठां खण्ड पूरा हुआ ॥ ६ ॥

"वर्षासु श्रवणेन स्वाध्यायानुपाकरोति" हस्तेन वा ॥१॥ प्रौष्ठपदीमित्येके ॥२॥ स जुहोति ॥ ३ ॥ "अप्वानामासि तस्यास्ते जोष्ट्रीं गमेयम् ॥ ४ ॥ अहमिद्धि पितुः परिमेधा अमृतस्य जग्रभ । अहं सूर्य इवाजनि स्वाहा ॥५॥ सरस्वती नामासि सरस्वान्नामासि युक्तिर्नामासि योगो नामासि मतिर्नामासि मनोनामासि ॥६॥ तस्यास्ते जोष्ट्रीं गमेयम् । तस्यते जोष्ट्रं गमेयम् ।" ॥७॥ इति सर्वत्रानुषजति ॥८॥ युजे स्वाहा ॥ ९ ॥ प्रयुजे स्वाहा ॥१०॥ संयुजे स्वाहा ॥११॥ उद्युजे स्वाहा ॥१२॥ उद्युज्यमानाय स्वाहा"-इति जयप्रभृतिभिश्चाज्यस्य पुरस्तात् स्विष्टकृतोऽन्तेवासिनां योग-

मिच्छन्नथ जपति ॥१३॥ ऋतं वदिष्यामि सत्यं वदिष्यामि ब्रह्म वदिष्यामि तन्मामवतु तद्वक्तारमवतु अवतु मामवतु वक्तारं वाङ्मे मनसि प्रतिष्ठिता मनो मे वाचि प्रतिष्ठितमाविरायुर्मयि धेहि वेदस्य वाणीस्थ उपतिष्ठन्तु छन्दांस्युपाकुर्महेऽध्यायान् भूर्भुवः स्वरि"ति दर्भपाणिः त्रिस्सावित्रीमधीत्यादितस्त्रीननुवाकान् तथाङ्गानामेकैकं "को वो युनक्ती"ति च ॥१४॥

तस्यानध्यायाः ॥१५॥ समूहनवातो वलीकत्तारप्रभृतिवर्षा विद्योतमानस्तनयित्नुरिति" श्रुतिः॥१६॥ आकालिकं देवतुमुलं विद्युद्धन्वोल्कास्यत्तराशब्दाः ॥ १७ ॥ आचारेणान्येऽर्धपञ्चमासानधीत्य ॥ १८ ॥ "पञ्चार्धषष्ठान्वा" दक्षिणायनं वाधीत्य अथोत्सृजन्ति ॥ १९ ॥ एतेन धर्मेण "ऋतमवादिषं सत्यमवादिषम् ॥ २० ॥ ब्रह्मावादिषम् ॥ २१ ॥ तन्मावीत् तद्वक्तारमावीत् आवीन्ममावीत्तद्वक्तारम् ॥२२॥ वाङ्मे मनसि प्रतिष्ठिता ॥२३॥ मनो मे वाचि प्रतिष्ठितमाविरायुर्मयि धेहि ॥२४॥ वेदस्य वाणीस्थ प्रतिश्वसन्तु छन्दांस्युत्सृजामहेऽध्यायान् भूर्भुवःस्वरि"त्यन्तमधीत्य "को वो विमुञ्चती"ति च पक्षिणीं रात्रिं नाधीयीतोभयतः पक्षान्वा नात ऊर्ध्वं अभ्रेषु ॥ आकालिकविद्युत्स्तनयित्नुवर्षेषु । चाथोपनिषदर्हाः ॥ २५ ॥ ब्रह्मचारी सुचरितमेधावी कर्मकृद्धनदः प्रियो विद्यया वा विद्यामन्विच्छंस्तानि तीर्थानि ब्रह्मणो वेदस्य ब्रह्मचारि-

त्वादयः ग्रहणे तीर्थान्युपायाः ॥ २६ ॥ इति वाराहगृह्ये सप्तमः खण्डः ॥ ७ ॥

वर्षाऋतु में श्रवण नक्षत्र के दिन स्वाध्याय (वेदादि) का उपाकरण (विद्यारम्भ) नामक कर्म करे। या भाद्रमास के किसी तिथि के पूर्वाण्ह में हस्तनक्षत्र युक्त हो उसी दिन उपाकरण करे-ऐसा किन्हीं आचार्य्यों का मत है ॥ वह वेदाध्ययन या ब्रह्मयज्ञ का करने वाला 'अग्ने नामासि' इत्यादि मंत्रों से आठ आहुति होम आधार और आज्यभाग आहुतियों के पश्चात् करे। और सरस्वती इत्यादि छः खण्डों में जो २ स्त्रीलिङ्ग हैं उनके साथ "तस्यास्ते" जोड़े और "सरस्वान्नामा०" आदि पुं नपुंसक लिङ्गों में "तस्यतेजो०" इत्यादि जोड़े और सब के अन्त में स्वाहा लगावे ॥ इसके पश्चात् विद्यार्थियों या दूसरे एक साथ पढ़ने वालों को चाहता हुआ स्नातक "युजे स्वाहा०" इत्यादि तीन मंत्रों से होम करे। इसके पश्चात् "स्विष्टकृत्" आहुति से पहिले-"ऋतं वहिष्यामि०" इत्यादि मंत्रों का जप करे। फिर दहिने हाथ में कुश लेकर तीन बार गायत्री सावित्री मंत्र पढ़े। और "इषेत्वा०" इत्यादि तीन अनुवाक पढ़े। इसके अनन्तर "को वोयुं०" इत्यादि मंत्र पढ़े ॥ अब वेदादि पढ़ने में अनध्यायों को कहेंगे। वेदादिकों के पढ़ने में आगे कहे जाने वाले अवसरों पर अनध्याय होंगेः—आंधी आने पर, छज्जा से पानी वर्षने पर (इतना वर्षा कम से कम हो जिसमें छज्जा के छोर से ओलाही टपकने लगे) बिजुली चमकने और बादल गरजने पर भी जब तक चमके या गर्जें तब तक वेद न पढ़े ॥ ज्योतिषशास्त्र में लिखे अनुसार ग्रहों के जब युद्ध हो तब तक दिन रात वेद न पढ़े। बिजुली, इन्द्रधनुष और बड़े २ उल्का, तारे टूटने पर, शृगाल आदि के कुसमय रोने पर, सामवेद की ध्वनि होने पर अन्य वेद न पढ़े। इनसे भिन्न लोकाचार से समझना। साढ़े चार या साढ़े पांच या छः मास या दक्षिणायन काल-तक पढ़ कर-तब पढ़ना बन्द रक्खे-इसको वेदाध्यायोत्सर्ग कर्म कहते हैं। इस उत्सर्ग कर्म में "ऋतमवादि०" इत्यादि मंत्र का जप

करे । वेदान्त उपनिषद् पढ़ाने योग्य अधिकारी निम्न लिखित सात होते हैं। ब्रह्मचारी सदाचारी बुद्धिमान्, आचार्य को प्रिय, धन देनेवाला, विद्या देनेवाला, वेदादि पढ़ाने में निपुण, विद्या के बदले विद्या देनेवाला, ये सब वेद के ज्ञान प्राप्ति में उपाय हैं ॥ सू० १-२६ यह सातवां खण्ड पूरा हुआ ॥७॥

अथ चातुर्होत्रिकी दीक्षा सम्वत्सरम् ॥१॥ आघाराघारौ आज्यभागौ हुत्वा चतुर्होतॄन् स्वकर्मणो जुहुयात् ॥ ॥२॥सहपञ्चहोत्रा षड्होत्रा सप्तहोतारमन्ततो हुत्वा व्रतं प्रदायादितो द्वावनुवाकावनुवाचयेत् ।३। अथाग्निव्रताश्वमेधिकी दीक्षा संवत्सरम् ॥ द्वादशरात्रं वा ॥ ४ ॥ आकूतमग्निमि" ति षड्हुत्वा ॥ ५ ॥ व्रतं प्रदायादितोऽष्टावनुवाकाननुवाचयेत् ॥ ६ ॥ त्रिषवणमुदकमाहरेत् ॥ ७ ॥ त्रीस्त्रीन् कुम्भांस्त्रींश्च समित्फलान् भस्मनि शयीत ॥८ ॥ करीषे सिकतासु भूमौ वा ॥ नोदकमभ्युपेयात् ॥ ९ ॥ संवत्सरे समाप्ते ॥ १० ॥ घृतवतापूपेनाग्निमिष्ट्वा वात्सप्रं वाचयेत् ॥ ११ ॥ स्मार्तेन यावदध्ययनम् ॥१२॥ काण्डव्रतावशेषो होमार्थश्च आद्यन्तयोर्जुहुयात् ॥ १३ ॥ अथैनं परिदत्ते "अग्नये त्वा परिददामि ॥ १४ ॥ वायवे त्वा परिददामि ॥ १५ ॥ सूर्याय त्वा परिददामि ॥ १६ ॥ प्रजापतये त्वा परिददामी" ति ॥ १७ ॥ एतेनैवाश्वमेधो व्याख्यातः ॥ १८ ॥ नवमेनानुवाकेन हुत्वा दशमेनोपतिष्ठेत ॥ १९ ॥ अश्वाय घासमुदकस्थानं उदकं चाभ्युपेयात् ॥ २० ॥ एताभ्यामेव मन्त्राभ्यां त्रैविद्यकं व्रतमुपेयात् ॥

॥ २१ ॥ रहस्यमध्येष्यतः प्रवर्ग्यः ॥ २२ ॥ तस्य व्रतोपायनं समिन्मन्त्रश्च ॥ २३ ॥ तिष्ठेदहनि रात्रावासीत वाग्यतः ॥ २४ ॥ पर्वसु चैवं स्यात् ॥ २५ ॥ सर्वजटश्च स्यात् ॥ २६ ॥ संवत्सराद्वरः प्रवर्ग्यो भवति ॥ २७ ॥

इति वाराहगृह्ये अष्टमः खण्डः ॥ ८ ॥

चातुर्होत्रिकी दीक्षा-यह कर्म का नाम है। इस चातुर्होत्रिकी दीक्षा को ब्रह्मचारी एक वर्ष तक करे। आधार की दो आहुति देकर आज्य भाग की दो आहुति करे और वाचस्पति आदि देवों की संज्ञा चतुर्होता आदि संज्ञा हैं। ब्रह्मचारी अपना कर्म करता हुआ वाचस्पति आदि चार होताओं के लिये दीक्षा के दिनों में आहुति दिया करे और वाक् आदि छः होताओं के साथ सप्तहोतृक होम करे। अन्त में ब्राह्मणादि दीक्षित को दूध आदि भोजन के लिये नियत वस्तु देकर वेद के आरम्भ के दो अनुवाकों का अनुवाचन करावे। अब अग्नि की दीक्षा जो एक वर्ष की होती है उस को कहते हैं या १२ दिन की होती है। "प्राक्तमग्निं०" इत्यादि मंत्र से छः आहुति करे। अग्निकाण्ड के आदि से आठ अनुवाकों का अनुवाचन करावे। ब्रह्मचारी ऐसा नित्य २ वर्ष भर या बारहों दिन करे और कुछ विशेष नियम ये हैं। कि सायं प्रातः और मध्याह्न में तीनों सयम तीन २ घड़ा भर २ जलाशय से जल लाया करे और तीन २ समिधा और तीन २ फल भीं लाया करे। जिस जमीन पर कुछ पलाल आदि भी न बिछा हो ऐसी शून्य भूमि पर या भस्म बिछी हो या कण्डों का चूरा बिछा हो या बालू बिछाया हो उस पर एक वस्त्र केवल लंगोटी या धोती पहन कर सोया करे। दीक्षा के दिनों में जल में घुस कर स्नान न करे और अन्य प्रकार से भी स्नान न करे। वर्ष भर या १२ दिन के व्रत समाप्त होने पर मालपूआ द्वारा प्रधान देवता अग्नि के लिये होम करके "वत्स्री०" देवता वाले अनुवाक् का जप करे। और जब तक अध्ययन करे स्मार्त्त विधि से वर्त्ते। काण्ड व्रत विशेष और

होम के लिये विधि यह है अन्न और होम की आदि और अन्त में आहुतियां देवे। अब आचार्य ब्रह्मचारी को संकेत कर अग्नि आदि देवों को समर्पण करते हैं। "अग्नये०" इत्यादि मंत्रों से समर्पण करे। इसी प्रकार अश्वमेध का भी व्याख्यान हुआ जानो। बेंत नामक वृक्ष की समिधाओं से अग्निको प्रज्वलित करके नवम अनुवाक् से होम और छठे अनुवाक् से देवता का उपस्थान करे। उसके पश्चात् भोजन के लिये नियत यवागू दीक्षित को यथा योग्य देकर आदि से २१ अनुवाकों का अनुवाचन करे। सायं प्रातः और मध्याह्न तीनों काल में तीन २ पूला घास घोड़े के लिये लावे। यह आश्वमेधिकी दीक्षा केवल क्षत्रिय ब्रह्मचारी के लिये है। इस लिये इस दीक्षा से क्षत्रिय ब्रह्मचारी अच्छे प्रकार देव बुद्धि से घोड़े की सेवा भी अन्य अपने नियम पालने के समान ही किया करे। घोड़े की सेवार्थ जल के किनारे जावे और जल में न घुस कर बाहर ही से जल लेकर घोड़े की सेवा करे। इन्हीं दो मंत्रों से त्रैविधक व्रत को करे। रहस्य नाम वेद के उपनिषद् भाग को पढ़ना चाहता हो तो वाराह श्रौतसूत्र मे लिखे अनुसार ब्रह्मचारी प्रवर्ग्य संभरण कर्म के प्रतिपादक मन्त्र ब्राह्मण को पहिले पढ़े। उसके व्रतोपायन, समिधा-आदि के मन्त्र को भी वहीं से पढ़े। दिन में खड़ा रह कर व्यतीत कर और रात्रि में मौन हो बैठ कर और पर्व के दिनों (१४, ८, १५, ३० तिथियां तथा सूर्य की संक्रान्ति) में भी ऐसा ही व्रती होकर रहे। सम्पूर्ण शिर में केश रक्खे तो एक वर्ष के पीछे श्रेष्ठ प्रवर्ग्य हो जाता है॥ सू० १-२७॥ यह अष्टम खण्ड पूरा हुआ॥ ८॥

षोडशवर्षस्य गोदानम्॥ १॥ अग्निं वाऽध्येष्यमाणस्य अग्निगोदानिको मैत्रायणीयजटाकरणेनोक्तमन्त्रविधिः॥ २॥ उपस्थ उपकक्षयोश्चाधिको मन्त्रप्रयोगः॥ यत्क्षुरेण मर्चयते"ति भूमौ केशान्निखनेत्॥ ४॥ अन्ते गां दद्यात्॥ ५॥ द्वे द्वे गुरुणाऽनुज्ञातः स्नायात्॥ ६॥ छन्दस्यर्थान् बुध्वा स्नास्यन् गां कारयेत्॥ ७॥ आचार्य-

मर्हयेत् ॥ ८ ॥ "आपो हिष्ठे"ति तिसृभिः "हिरण्यवर्णाः शुचय" इति चतसृभिः स्नात्वा अहते वाससी परिदद्राति ॥ ९ ॥ वस्व्यसि वसुमन्तं मा कुरु ॥१०॥ सौवर्चसाय मा तेजसे ब्रह्मवर्चसाय परिददामी''ति, "विश्वजनस्य छायासी"ति छत्रं धारयते ॥ ११ ॥ माला-माबध्नीते "यामश्विनौ धारयेतां बृहस्पतिः पुष्करस्रजम् ॥१२॥ तां विश्वेदेवैरनुमतां मालामारोपयामी"ति ॥१३॥ "तेजोसीत्ति हिरण्यं बिभृयात् ॥ १४ ॥ प्रतिष्ठे स्थो देवते द्यावापृथिवी मा मा संतासमि''त्युपानहौ ॥ १५ ॥ "विष्ट-म्भोसी''ति धारयेद्वैणवीं यष्टिं सोदकं च कमण्डलुम् ॥१६॥ निस्यत्रनान्याहुराचार्याः "द्विवस्त्रोत ऊर्ध्वं शोभनं वासो भर्तव्यमि"ति श्रुतिः ॥ १७ ॥ आमन्त्र्य गुरून् गुरु-वधूश्च स्वान् गृहान् व्रजेत् ॥ १८ ॥ प्रतिषिद्धमपरया द्वारा निस्सरणं मलवद्वाससा सह संभाषा रजस्वद्वाससा सह शय्यागोगुर्वोर्दुरुक्तवचनमस्थाने शयनं स्मयनं स्थानं यानं गानं स्मरणमिति तानि वर्जयेत् ॥ १९ ॥ याजनं वृत्तिरु-ञ्छशिलमयाचितप्रतिग्रहः साधुभ्यो वा याचितमनायासेन सिध्यमानायां वा वैश्यवृत्तिः ॥ २० ॥ स्वाध्यायविरोधि-नोऽर्थान्विसृजेत् ॥२१॥ इति वाराहगृह्ये नवमः खण्डः ।९।

जन्म से-सोलहवें वर्ष गोदान नाम के शान्त संस्कार करे । या वेदा-ध्ययन करता हुआ जब आवसथ्यादिका स्थापन विधि पूर्वक करै तब पहिले या पीछे केशान्त संस्कार करे । क्योंकि श्रुति में लिखा है कि महर्षि मैत्रा-

यणि ने अग्निस्थापन के समय गोदान संस्कार किया था। उपस्थ (जननेन्द्रिय) और दोनों उपकक्षों (बगल) के मन्त्र प्रयोग अधिक हैं। "यत् क्षुरेण" इत्यादि मंत्र पढ़ कर केशों को काट कर भूमि में गाड़ देवे। और अन्त में आचार्य को दो २ गौयें देवे और गुरु की आज्ञा से समावर्तन स्नान करे। वेदों के अर्थ को भलीभांति समझ कर-तब समावर्त्तन का स्नान करता हुआ गौद्वारा आचार्य की पूजा करे। "आपो हिष्ठा०" इत्यादि तीन और "हिरण्यवर्णाः०" इत्यादि चार ऋचाओं से स्नान करने पर चीरेदार नये २ वस्त्र स्नातक को देते समय "वस्त्र्यसि" इत्यादि मंत्र पढ़े। और "विश्वजनस्य०" मन्त्र से छाता धारण करे "या मश्विनौ०" मन्त्र पढ़ कर माला धारण करे। "तेजोसि०" मन्त्र से सुवर्ण धारण करे "प्रतिष्ठे स्थो देवते०" इत्यादि मंत्र से जूते पहने "विष्टम्भोसि०" इत्यादि मन्त्र से बांस की लाठी और जल सहित कमण्डलु को धारण करे॥ स्नातक का नित्य जिन नियमों का पालन करना चाहिये उनको आचार्य कहते हैं:—दो वस्त्र (एक पहनने और दूसरा ओढने या दुपट्टा) सुन्दर वस्त्र धारण करना चाहिये ऐसा श्रुति कहती है। यदि पिता से भिन्न गुरु के पास वेद पढने के लिये गुरुकुल में गया हो तो गुरु और गुरु पत्नी से आज्ञा लेकर अपने घर को जावे॥ अब स्नातक के गृहस्थ के लिये कुछ नियमों को कहते हैं। घर के मुख्य द्वार को छोड़ कर किसी खिड़की आदि से न निकला करे। मलिन कपड़े वालों को स्पर्श न करे। रजस्वला स्त्री के साथ न सोवे। माता पितादि गुरु जनों के विषय में सामने या पीछे में कटु वाक्य न कहे और न सुने। शयन स्थान से अन्यत्र न सोवे। विना प्रयोजन न हंसे न डोले, निष्प्रयोजन कहीं न ठहरे। गाना, बजाना, नाचना, न करे और न अन्यों के गानादि सुनने देखने को जावे॥ यज्ञ कराना, उञ्छशिल (खेत में के गिरे अन्न को चुन चुन कर लेना) और विना मांगे धन स्वीकार करना। या अच्छे लोगों से सुगमता से मांगना भी, या आसानी से सिद्ध होने वाली वैश्य वृत्ति कर जीविका करनी। और स्वाध्याय के विरुद्ध अर्थों का त्याग करना॥ सू० १-२१॥ यह नवम खण्ड पूरा हुआ॥ ६॥

विनीतक्रोधस्सहर्षः महिषीं भार्यां विन्देता''नन्यपूर्वां यवीयसीम् ॥ १ ॥ असमानप्रवरैर्विवाह ॥ ऊर्ध्वं सप्तमात्पितृबन्धुभ्यः पञ्चमान्मातृबन्धुभ्यो बीजिनश्च ॥ २ ॥ कृत्तिकास्वातिपूर्वैरिति वरयेत् ॥ ३ ॥ मृगशिरश्श्रविष्ठोत्तराणीत्युपयमेत ॥ ४ ॥ पञ्च विवाहकारकाणि भवन्ति— वित्तं रूपं विद्या प्रज्ञा बान्धवमिति ॥ ५ ॥ एकालाभे वित्तं विसृजेत् ॥ ६ ॥ द्वितीयालाभे रूपं तृतीयालाभे विद्यां प्रज्ञायां तु बान्धवा विवदन्ते ॥ ७ ॥ अनृक्षरा ऋजवः सन्तु पन्था येभिस्सखायो यन्ति नो वरेयम् ॥८ । समर्यमा सं भगो नो निनीयात् सञ्जास्पत्यं सुयममस्तु देवाः इति वरकान्व्रजतोऽनुमन्त्रयते बन्धुमतीं कन्यामस्पृष्टमैथुनामुपयच्छेतानग्निकाम् ॥ श्रेष्ठं विज्ञानमस्यै कुर्यात् ॥ ९ ॥ चतुरो लोष्टानाहरेत् ॥ १० ॥ सीतालोष्टं वेदिलोष्टं गोमयलोष्टं स्मशानलोष्टं च एतेषामेकं गृह्णीष्वेति ब्रूयात् ॥ ११ ॥ स्मशानलोष्टं चेद्गृहणीयात् नोपयच्छेत् ॥ १२ ॥ असंसृष्टामधर्मेणोपयच्छेत् ॥ १३ ॥ ब्राह्मेण शौल्केन वा ॥ शतमिति रथं दद्याद्गोमिथुनं वा उभये ॥१४॥ तेजनीष्वासजत् ॥ १५ ॥ जन्यान् कौमारिकांश्च ॥ १६ ॥ पूर्वे जन्यास्स्युः अपरे कौमारिकाः चतुरो गोमयपिण्डान्कृत्वा द्वावन्येभ्यस्तथान्येभ्य इति प्रयच्छेत् ॥ १७ ॥ धनं न इति ब्रूयुः पुत्रपशवो न इति ॥ १८ ॥ जन्यां ददामीति ॥ १९ ॥ प्रतिगृह्णामीति प्रतिगृह्य त्रिर्ब्रह्मदेयानि कृतेनासं

न विसङ्कसेयुः ॥ २० ॥ त्रिरानन्दं मागधो ह्वयेत् ॥ २१ ॥
इति वाराहगृह्ये दशमः खण्डः ॥ १० ॥

विनीत क्रोध (जिसने क्रोध को वश में कर लिया है) हर्ष युक्त पुरुष युवती स्त्री से विवाह करे जो अपनी ही वर्ण की हो और किसी से व्याही न गयी हो ॥ और जो एक गोत्र और प्रवर की न हो ॥ पिता और पिता के भाइयों की सात पीढी और माता के भाइयों की पांच पीढी के भीतर की न हो ॥ कृत्तिका, स्वाति और पूर्वाफल्गुनी आदि तीनों पूर्वा नक्षत्रों में विवाह के लिये वर को पसन्द करे । और रोहिणी, मृगशिर, श्रवण, धनिष्ठा, और तीनों उत्तरा ये नक्षत्र वाग्दान और विवाह के लिये अच्छे हैं । कन्या का पिता आदि वर की पांच दशा देखे १ धन २ रूप, ३ विद्या ४ बुद्धि और ५ कुटुम्ब । रूप से काणा, अन्ध आदि का निषेध और बान्धव के साथ कुलीनता भी आ जाती है ॥ यदि उक्त पांचों गुण वर में न मिलते हों तो, धन को छोड़ देवे क्योंकि धन अनित्य है । विद्या बुद्धि वाले के पास धन हो जाना सुलभ है । दो गुण न मिलते हों तो रूप को भी छोड़ देवे क्योंकि विद्या कुरूपों का भी रूप है । तीसरा न मिले तो विद्या को भी छोड़ दे क्योंकि बुद्धिमान होगा तो पीछे भी पढ सकता है जो न भी पढ सके तो भी बुद्धिमान निर्बुद्धि पठित से अच्छा है और बुद्धि और कुटुम्ब इन दोनों में कुटुम्ब न होने पर भी बुद्धिमान वर का विवाह कर देवे ॥ "अनृक्षरा०" इत्यादि मन्त्रों से वर खोजने के लिये जाने वाले वरकों को अनुमन्त्रण करे । जिसके साथ किसी पुरुष का संयोग न हुआ हो, भाई जिसके विद्यमान हो जो अपने वर्ण की हो, जिसके प्रवर ऋषि अपने से भिन्न हों, जो ठीक युवति अच्छी हो जिसकी छाती के स्तन न उगे हों, न ऋतुमती हुई हो जिसका रूप, लावण्य, वर्ण, अच्छा गोरा हो ऐसी कन्या से विवाह करें । विधवा या वन्ध्यादि गुप्त या अदृष्ट दोषों की परीक्षा के लिये-जुना हुआ खेत होम की वेदी, गौशाला, मरघट की मट्टी-में से एक ढेला लेकर कन्या से उठवावे-यदि मरघट की मट्टी

उठावे तो उसके साथ विवाह न करे । ब्राह्म या आर्ष विवाह की रीति से उसके साथ विवाह करे । एक बैल एक गौ या दो बैल दो गौ या उनका मूल्य कन्या के पिता को देकर विवाह करना आर्ष कहलाता है । या सौभरी सोना रथ या दो गौ, दो बैल या सोने आदि के भूषण भोजन के वस्तु अन्नादि वस्त्र देकर विवाह करे । ये सब पक्षान्तर में विकल्प हैं । अग्नि से पश्चिम में चार आसन बिछावे । उन आसनों पर निम्न रीति से बैठे-अग्नि से पूर्व में पश्चिमाभिमुख कन्या दाता बैठे । अग्नि से पश्चिम में पूर्वाभिमुख वर बैठे और दाता से उत्तर में पश्चिम को मुख कर कन्या बैठे और अग्नि से दक्षिण में उत्तर को मुखकर मन्त्र पढ़ने वाला पुरोहित या आचार्य्य बैठें । उन सबके बीच पूर्वाग्र कुश बिछाकर अक्षतों सहित जल से कांसे का पात्र भरके सोहागिन स्त्री दाता के हाथ में देवे । उस पात्र में सोना डाले । और कन्या का पिता, भाई या नाना जो संरक्षक हो, वह जिस वर से मूल्य न लिया हो ऐसी ब्रह्मदेया कन्या को तीन वार "प्रतिगृह्णामि" कहकर कन्या को स्वीकार करे । यदि वरसे कुछ धनादि लेकर कन्या के पिता ने विवाह किया हो तो वर सुवर्णादि धन अञ्जलि में ले और कन्या का पिता आदि कन्या का हाथ पकड़ कर कहे कि "धनायत्वा ददामि"-और वर अपने हाथों में लिया सुवर्णादि कन्या के पिता को देता हुआ कन्या का हाथ पकड़े और कहे कि "पुत्रेभ्यस्त्वा प्रतिगृह्णामि" इस प्रकार धन और कन्या का दोनों लौट फेर कर लेवें । चार वार देन लेन की लौट फेर दोनों करें । ऐसे सम्बन्ध को मगधदेशवासी त्रिरानन्द कहते हैं । सू० १—२१॥ यह दशम खण्ड पूरा हुआ ॥ १० ॥

अथ प्रवदने कन्यामुपवसितां स्नातां सुशिरस्कामहताऽनाच्छिन्नदशेन वाससा संवीतां संस्तीर्णस्य पुरस्ताद्विहितानि वादित्राणि विधिवदुपकल्प्य पुरस्तात्स्विष्टकृतः वाचे पथ्यायै पूष्णे पृथिव्यै अग्नये सेनायै धेनायै गायत्र्यै

त्रिष्टुभे जगत्यै अनुष्टुभे पङ्क्त्यै विराजे राकायै सिनी-
वाल्यै कुह्वै, त्वष्ट्रे आशायै सम्पत्त्यै भूत्यै निर्ऋत्यै अनु
मत्यै पर्जन्याय अग्नये स्विष्टकृते च जुहुयात् ॥ १ ॥
आज्यशेषेण पाणी प्रलिप्य कन्यामुखं संमार्ष्टि-"प्रियां
करो"मि पतये देवराणां श्वशुराय च ॥ २ ॥ रुच्यै त्वा-
ग्निस्संसृजतु रुचिष्या पतये भव ॥ ३ ॥ सौभाग्येन त्वा
संसृज विला देवी घृतपदीन्द्राण्यग्नायी अश्विनो राड्वा-
गिला द्यौररुन्धती"ति ॥ ४ ॥ अथ सर्वाणि वादित्राण्य-
भिमन्त्रयते ॥ ५ ॥ या चतुर्धा प्रवदत्यग्नौ या वाते या
बृहत्युत ॥ ६ ॥ पशूनां या ब्राह्मणे न्यदधुः शिवा सा
प्रवदत्वि"हेति सर्वाणि वा वादित्राण्यलङ्कृत्य कन्या
प्रवादयते ॥ ७ ॥ शुभं वद दुन्दुभे सुप्रजास्त्वाय गोमुख
॥ ८ ॥ प्रक्रीडन्तु कन्यास्सुमनस्यमानास्सहेन्द्राण्या सव-
यसः सनीडाः ॥ ९ ॥ प्रजापतिर्यो वसति प्रजासु प्रजा-
स्तन्वते सुमनस्यमानाः ॥ १० ॥ स इमां प्रजां रमयतु
प्रजात्यै स्वयं च नोरमतां संदधातन ॥ इति प्रवदन्ति
कालिकानि ॥ ११ ॥ कन्यामुदकेनाभिषिञ्चेत् ॥ १२ ॥
इति वाराहगृह्ये एकादशः खण्डः ॥ ११ ॥

अब विवाह में बाजे का कर्म कहते हैं । इस कर्म के लिये कन्या को उपवास रखकर स्नान करा (शिरसे) चीरे द्वार नये वस्त्र पहिनाकर यज्ञार्थ अग्नि के पास बिछाये हुए कुशों के पहिले शास्त्र से विहित बाजे गाजे का आयोजन कर स्विष्टकृत आहुति करने के पहिले "वाचे" आदि मंत्रों को पढ़कर आहुतियां करे । और आज्यशेष से दोनों हाथों को लीप कर कन्या

के मुखको "प्रिया" इत्यादि मंत्रों को पढ़कर सम्मार्जन करे। और "यावतुर्धा"० इत्यादि मंत्रों को पढ़कर तब बाजे को प्रतिमन्त्रित करे। या सब बाजों को० अलङ्कृत करे "शुभं वद"० इत्यादि मंत्रों को पढ़कर कन्या स्वयं बजावे। तब बाजा बजाने वाले अपने २ बाजे को बजावें। और कन्या को जल से सींचे ॥ सू० १–१२॥ ग्यारहवां खण्ड पूरा हुआ ॥ ११ ॥

षडर्घ्यार्हा भवन्ति–ऋत्विगाचार्यो विवाह्यो राजा स्नातकः प्रियश्चेति ॥ १ ॥ अप्राकरणिकानापरिसंवत्सरादर्हयन्ति ॥ २ ॥ अन्यत्र याज्यात्कर्मणो विवाहाच्च ॥ न जीवत्पितृकोर्घ्यं प्रतिगृह्णीयात् ॥ ३ ॥ कांस्ये चमसे वा सदध्नि मध्वासिच्य वर्षीयसा पिधायाचमनीयप्रथमैः प्रतिपद्यन्ते ॥ ४ ॥ विराजो दोहोसि विराजो दोहमशीय मयि दोहः पद्यायै विराजः कल्पयता" मिति ॥ ५ ॥ एकैकमाह्रियमाणं प्रतीक्षते ॥ ६ ॥ सावित्रेण विष्टरं प्रतिगृह्य–अहं वर्ष्म सदृशानामुद्यतामिव सूर्यः ॥ ७ ॥ इदमहं तमधरं करोमि यो मा कश्चिदासती"त्येकस्मिन्नुपविशति ॥ ८ ॥ राष्ट्रभृदसीत्याचार्य आसन्दीमनुमन्त्रयते ॥ मा त्वा जोषमि"त्यन्यतरमधस्तात्पादयोर्विष्टरमुपकर्षति ॥ ९ ॥ विष्टरमासीनायैकं त्रिः प्राह ॥ १० ॥ नैव भो "इत्याह ॥ ११ ॥ नम आर्षेयाय" इति श्रुतिः ॥ १२ ॥ स्पृशत्यर्घ्यं पाद्येन पादौ प्रक्षाल्य सावित्रेणोभयतोविष्टरं मधुपर्कं प्रतिगृह्य "अदित्यास्त्वा पृष्ठे सादयामी"ति प्रतिष्ठाप्यावसाद्य "सुपर्णस्य त्वा गरुत्मतश्चक्षुषाऽवेक्षे" इत्यवेक्ष्य "नमो रुद्राय पात्रसदे"–इति प्रादे-

शेन प्रतिदिशं व्युद्दिश्याङ्गुष्ठेनोपमध्यमया च "मधु वाता ऋतायते" इति तिसृभिस्संसृजति ॥ १३ ॥ अमृतोपस्तरणमसि" इत्युपस्तरति "सत्यं यशः श्रीर्मयि श्रीश्श्रयतामि"ति मधुपर्कं त्रिः प्राश्नाति भूयिष्ठम् ॥ १४ ॥ सुहृदेऽवशिष्टं प्रयच्छति ॥ १५ ॥ "अमृतापिधानमसीत्या"चामति ॥१६॥ असिपाणिर्गां प्राह "हतो मे पाप्मा पाप्मानं मे हत ॥ १७ ॥ यां त्वा देवा वसवोऽन्वजोविषुरादित्यानां स्वसारं रुद्रमातरम् ॥ १८ ॥ दैवीं गामदितिं जनानामारभन्तामर्हतामर्हणाय ॥ १९ ॥ ओं कुरुते"ति संप्रेष्यति ॥ २० ॥ चतुरवरान्ब्राह्मणान् नानागोत्रानित्येकैकं पश्वङ्गं पायसं वा भोजयेत् ॥ २१ ॥ यद्युत्सृजेत्— "माता रुद्राणां दुहिता वसूनां स्वसादित्यानामृतस्य नाभिः ॥ २२ ॥ प्रनुवोचं चिकितुषे जनाय मागामनागामदितिं वधिष्ठ ॥ २३ ॥ ओं भूर्भुवस्स्वरों"—इत्युत्सृजतु तृणान्यत्तूदकं पिबतु ॥ २४ ॥ अथालङ्करणम् ॥ २५ ॥ "अलङ्करणमसि सर्वस्मादलं मे भूयासम् ॥ २६ ॥ प्राणापानौ मे तर्पयामि समानव्यानौ मे तर्पयामि उदानरूपे मे तर्पयामि सुचक्षुरहमक्षिभ्यां भूयासं सुवर्चा मुखेन सुश्रुत्कर्णाभ्यां भूयासमि"ति यथालिङ्गमङ्गानि संस्पृशति अथ गन्धाच्छादने वाससी परिधास्ये "यशो धास्ये दीर्घायुत्वाय जरदष्टिरस्तु शतं जीवेम शरदः पुरूची रायस्पोषमभिसंव्ययिष्ये" इत्यहतं वासः परिधत्ते यदि पशु-

मालभते-शं नो मित्र इति पाणो प्रक्षाल्य यथार्थमालभ-नमित्येके ॥२७॥ इति वाराहगृह्ये द्वादशः खण्डः ॥१२॥

ऋत्विज् (पुरोहित) १ उपनयन कराके वेद पढ़ाने वाला आचार्य्य २ जामाता (वर) ३ राजा (मूर्द्धाभिषिक्त) ४ स्नातक (ब्रह्मचर्य समाप्त करने वाला) ५ और श्वशुर आदि प्रिय व्यक्ति ६ । ये छ पुरुष मधुपर्कादि के विधान से पूजने योग्य होते हैं। बिवाह और अग्निष्टोमादि यज्ञों के समय तो मधुपर्क से पूजने का प्रकरण है, वहां तो वर आदि का मधुपर्क विधि से पूजन होना ही इष्ट है। परन्तु विना प्रकरण के दैवात् पुरोहितादि आ जावें तो एक वर्ष में एक ही वार मधुपर्क से उन का पूजन करे। अर्थात एक वर्ष में उनका दोवारा पूजन न करे। यज्ञ कर्म में वरण किये ऋत्विज और सदस्य लोग भी प्राकरणिक होते हैं, उस समय उनके वरण से पहिले मधुपर्क से उनका पूजन होना उचित है। जिसका पिता जीवित हो वह मधुपर्क से पूजा में विकल्पित है अर्थात् उसकी पूजा करे या न करे ऐसा श्रुति में लिखा है। उक्त छः ऋत्विज आदि का पूजन निम्न लिखित रीति से करे। कांसे के कटोरे में या प्रणीता के समान चमसपात्र में मधुपर्क और दही मिला के एक बड़े पात्र से ढांप कर आचमनीय जल आदि सहित पूजा के पास पुजक आवे। आचमनादि के लिये लाये एक २ जलादि वस्तु को पूज्य ऋत्विज आदि पुरुष "विराजो दोहोऽसि०" इत्यादि मंत्र पढ़ता हुआ देवे। फिर "देवस्यत्वा०" इस सविता देवता वाले मंत्र पढ़ के विष्टर को हाथ में लेके "अहं वर्ष्म०" मंत्र को जपे। आचार्य्यादि पूज्य बैठने को लाये कुर्सी चौकी या सिंहासनादिको देखता हुआ "राष्ट्रभृदसि०" मन्त्र पढ़े। "मा त्वा जोष" इत्यादि मंत्र पढ़ के पूज्य आचार्य्य आदि दोंनों पगों के नीचे विष्टर को दबावे। "आचमनीयम्" "विष्टरः" इन दोनों को हुआ पूजक एक २ वार बोले परन्तु "अर्घ्यं पाद्यादि" देता हुआ "पाद्यं पाद्यं पाद्यम्" इत्यादि प्रकार तीन २ वार कहे। फिर पूज्य "नैव भोः" कहे कि मैं पूजा के योग्य नहीं किन्तु "नम आर्षेयाय" मैं ऋषियों को नमस्कार

करता हूँ क्योंकि यहां भी वे ही पूज्य हैं, ऐसा श्रुति में कहा है फिर "अर्घ्य" को छू कर ग्रहण करे ॥ पाक जल से पहिले दहिना फिर वाम पग धोकर "देवस्य त्वा०" इस सविता देवता वाले मन्त्र से दाता के तीन वार कहने पर मधुपर्क को दहिने हाथ में लेकर वाम हाथ में रख के दहिने हाथ की तर्जनी अंगुष्ठ से थोड़ा २ ऊपर को ईशान कोण से लेकर प्रत्येक दिशा में प्रदक्षिण क्रम से "नमो रुद्राय०" मंत्र को प्रत्येक दिशा के साथ वार २ पढ़ता हुआ मधुपर्क के छींटा देवे। फिर "मधुवाता ऋतायते०" इत्यादि तीन ऋचा पढ़ के दहिने हाथ की अनामिका अङ्गुली से मधुपर्क को मिलावे ॥ फिर "अमृतोप०" मंत्र पढके उपस्ताररूप ० आचमन पहिले करे ॥ फिर "सत्यं यशः०" मंत्र को पढ़के तीन वार थोड़ा २ लेकर मधुपर्क को चाटे। एक वार मंत्र पढ़के दो वार चुप चाप। इसके पश्चात् "अमृतापि०" मंत्र पढके ऊपर से अभिचोर रूप आचमन करे। फिर शेष बचे मधुपर्क को अपने किसी प्रिय मित्र को पात्र सहित दे देवे। फिर तलवार हाथ में लेकर "गौ गौं गौः" ऐसा दाता पूजक कहे ॥ अगर संज्ञपन चाहता हो तो पूज्य आचार्य्यादि "हतो मे पाप्मा०" इत्यादि प्रैषवाक्य यजमान से कहे। [मधुपर्क में पशु संज्ञपन सदा से ही विकल्पित है। सत्य युगादि में भी नियत नहीं है पर कलियुग में "लोक विक्रुष्ठ मे वच०" इत्यादि मनु आदि के वचन अनुसार सर्वथा ही वर्जित है। किसी प्रकार कर्त्तव्य नहीं।] फिर भिन्न २ गोत्र वाले चार ब्राह्मणों को भोजन करावे या पशु का अङ्गरूप पायस नाम खीर मधुपर्क पूजन में करा लेवे क्योंकि दूध भी पशु का अंश ही है। और विकल्पित पक्षान्तर में गौ को छोड़ देना चाहे, तो "माता रुद्राणां०" इत्यादि मन्त्र पढ़के छुड़वा देवे ॥ फिर "अलङ्करणम्०" मन्त्र पढ़ के माला आदि आभूषण पहने "प्राणा पानौ०" मंत्र पढ़के नाक के दोनों छिद्रों को स्पर्श करे ॥ "समान व्यानौ०" मंत्र से नाभिका "उदान रूपे०" मंत्र से कण्ठ का "सुचक्षु०" मंत्र से दोनों आंखों का "सुवर्चासु०" मंत्र से मुख का और "सुश्रुत कर्णाभ्या०" मंत्र से दोनों कानों का स्पर्श करे। पहिले दहिने फिर बायें कान को दहिने हाथ से सर्वत्र स्पर्श करे और

स्नातक पुरुष पूर्व कही स्नान विधि से पहिले ही मधुपर्क को प्राशन कर लेने पर विवाह के समय शरीर में चन्दन और सुगन्ध तैल आदि सहित उबटन लगावे। ऐसा किन्ही आचार्य्यों का मत है और विवाह के पश्चात् स्नान विधि करे॥ और " परिधास्ये० " मंत्र से चीरदार नई धाती पहिने और " यशसामा० " मन्त्र से एक चीरेदार नया दुपट्टा ओढ़े। यह बारहवां खण्ड पूरा हुआ॥ १२॥

पश्चादग्नेश्चत्वार्यासनानि उपकल्पयीत ॥ १ ॥ तेषू-पविशन्ति-पुरस्तात्प्रत्यङ्मुखो दातापश्चात्प्राङ्मुखः प्रति-ग्रहीता ॥ २ ॥ दातुरुत्तरतः प्रत्यङ्मुखी कन्या ॥ ३ ॥ दक्षिणत उदङ्मुखो मन्त्रकारः ॥ ४ ॥ तेषां मध्ये प्राङ्-मूलान्दर्भानास्तीर्य कांस्यमक्षतोदकेन पूरयित्वा अविध-वाऽस्मै प्रयच्छति ॥ ५ ॥ तत्र हिरण्यमष्टौ मङ्गलान्यावेद-यति ॥ ६ ॥ मङ्गलान्युक्त्वा ददामि प्रतिगृह्णामि इति त्रिर्ब्रह्म देया पिता भ्राता वा दद्यात् ॥ ७ ॥ सहिरण्या-नञ्जलीनावपति ॥ ८ ॥ "धनायस्वे"ति दाता ॥ ९ ॥ पुत्रेभ्यस्त्वे"ति प्रतिग्रहीता ॥१०॥ तस्मै प्रस्यावपति ॥११॥ चतुर्व्यतिहृत्य ददाति ॥ १२ ॥ सावित्रेण कन्यां प्रतिगृह्य प्रजापतय इति च "क इदं कस्मा अदादि"ति सर्वत्रा-नुषजति "कामैतत्ते" इत्यन्तम् ॥ १३ ॥ समाना वा आकूतानीति सह जपत्यन्तादनुवाकस्य ॥१४॥ खेरथस्य खेनसः खे युगस्य शतक्रतो ॥ १५ ॥ अपालामिन्द्रस्त्रिः पूत्व्यकृणोत्सूर्यत्वचं" इति तेनोदकांस्येन कन्यामभि-षिञ्चेत् ॥१६॥ इति वाराहगृह्ये त्रयोदशः खण्डः ॥१३॥

कन्यादान के निमित्त अग्नि के पश्चिमभाग में चार आसन बिछावे। उन में से-पहिले पश्चिमाभिमुख हो दाता उसके अनन्तर दान लेने वाला वर पूर्व मुख हो बैठे। और दाता के उत्तर भाग में पश्चिमाभिमुख हो कन्या बैठे। और दक्षिणभाग में उत्तरमुख करके कर्म कराने वाले पुरोहित बैठें। उनके बीच मे पूर्व को जड़ कर कुशों को बिछाकर कांसा के पात्र में जल अक्षत और सोना भर कर सधवा स्त्री दाता को ८ अङ्गुलि के पदार्थ सहित देवे। कन्या का पिता, भाई या नाना जो उसका संरक्षक हो वह जिसका वर से मूल्य नहीं लिया हो ऐसी ब्रह्मदेया कन्या को तीन वार अक्षत सोना डाले जलपात्र सहित " ददामि० " कहकर देवे और वर तीन वार प्रति-गृह्णामि " कहकर कन्या को स्वीकार करे। यदि कुछ धनादि वर से लेकर कन्या के पिता ने विवाह किया हो तो वर सोना आदि धन अपनी अञ्जली में ले और कन्या का पिता आदि कन्या का हाथ पकड़ कर कहे कि "धनाय त्वा ददामि " और वह वर अपने हाथों में लिया सोना आदि कन्या के पिता को देता हुआ कन्या का हाथ पकड़े और कहे " पुत्रेभ्यस्त्वा प्रतिगृ-ह्णामि० " इस प्रकार धन और कन्या का दोनों लौट फेर कर लेवें॥ यों चार वार देन लेन की लौट फेर दोनों करें॥ वर सविता देवता वाले " देव स्यत्वा० " इत्यादि प्रत्येक मन्त्र से कन्या को स्वीकार करे० और प्रत्येक मन्त्र के अन्त में " क इदं० " से लेकर " कामैतत्ते० " तक के मन्त्र को सब के साथ जोड लेवे और अनुवाक् के अन्त तक शेष बचे " समाना वा आकूतानि" इत्यादि मंत्रों को कन्या के देने लेने वाले सब लोग एक साथ ही जपें। अर्थात् साफ बोलें। वर " खेरथस्थ० ' ऋचा पढ़के कांसे के पात्र में पूर्व से रक्खे अक्षतों सहित जल से कन्या के शिर पर अभिषेक करे॥ सू० १-१६ यह तेरहवां खण्ड पूरा हुआ॥ १३॥

प्रागुदक्श्वीं लक्षणमुद्धृत्यावोक्ष्य स्थण्डिलं गोमयेनोप-लिप्य मण्डलं चतुरस्रं वा अग्निं निर्मथ्याभिमुखं प्रणयेत् ॥ १ ॥ तत्र ब्रह्मोपवेशनम् ॥ २ ॥ दर्भाणां पवित्रे मन्त्र-

वदुत्पाद्येमं "स्तोममर्हत" इत्यग्निं परिसमूह्य पर्युक्ष्य परिस्तीर्य पश्चादग्नेरेकवद्बर्हिस्तृणाति ॥ ३ ॥ उदक् प्राक्-कूलान् दर्भान् प्रकृष्य दक्षिणान् तथोत्तरान् अग्रेणाग्निं दक्षिणैरुत्तरानवस्तृणाति ॥ ४ ॥ अग्न्यायतनस्य मध्यमद-क्षिणोत्तरप्रदेशेषु उदगग्रपूर्वाग्रान्परिधीन्परिदधाति ॥ ५ ॥ दक्षिणतोग्नेर्ब्रह्मणे संस्तृणाति ॥ ६ ॥ अपरं यजमानाय पश्चार्धे पत्न्यै" अपरमपरशाखोदकधारयोर्लाजाधारायाश्च पश्चाद्युगधारस्य च ॥ ७ ॥ स्योना पृथिवि भवेत्ये"तयाऽ-वस्थाप्य शमीमयीं शम्यां कृत्वाऽन्तर्गोष्ठेऽग्निमुपसमाधाय भर्ता भार्यामभ्युदानयति ॥ ८ ॥ वाससोऽन्ते गृहीत्वा" अघोरचक्षुरपतिघ्न्येऽधि शिवा पशुभ्यः सुमनाः" सुवर्चाः ॥९॥ वीरसूर्देवकामा स्योना शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे । इत्यभिपरिगृह्याभ्युदानयति ॥१०॥ उत्तरेण रथं वासो वानु-परिक्रम्यान्तरेण ज्वलनवहनावतिक्रम्य दक्षिणस्यां धुर्युत्त-रस्य युगतस्तन्मना हस्तात्कन्यामवस्थाप्य शम्यामुत्कृष्य हिरण्यमन्तर्धाय—"हिरण्यवर्णाः शुचयः" इति तिसृभि-रभिषिच्यात्रैव बाणशब्दं कुरुतेति प्रेष्यति ॥११॥ अथास्यै वासः प्रयच्छति ॥ १२ ॥ या अकृन्तन्नवयन्या अतन्वत या अतन्वन्यावन्या वा हरन् ॥ ॥ १३ ॥ याश्चाग्र्या देव्योऽन्तानभितो ततन्थ ॥ १४ ॥ तास्त्वा देव्यो जरसे संव्ययंस्त्वायुष्मन्निदं परिधत्स्व वास इत्यहतं वासः परिधाप्यान्वारभ्याघारावाघार्याज्यभागौ हुत्वा "अग्नये जनिविदे स्वाहेत्यु"त्तरार्धे जुहोति ॥१५॥

सोमाय जनिविदे स्वाहेत्यु" त्तरार्धे जुहोति "सोमाय जनिविदे स्वाहेति" दक्षिणार्धे "गन्धर्वाय जनिविदे स्वाहे" ति मध्ये। "युनज्मि त्वे" ति "जातवेदसं कामं युक्तो वहे" ति "जातवेदसं भिषजं, विश्वाग्न" इति चाग्निं नक्षत्रमिष्ट्वा नक्षत्रदेवतां अहः अहर्देवतां रात्रिं रात्रिदेवतां ऋतुं ऋतुदेवतां यजेत्॥ १६ ॥ तिथिं तिथिदेवतां विरूपाक्षं च ॥ ॥ १७ ॥ सोमो दद्द्गन्धर्वाय गन्धर्वो दद्दग्नये ॥ १८ ॥ रयिं च पुत्रांश्चादादग्निर्मह्यमथो इमाम् । अग्निरस्याः प्रथमो जातवेदाः सोस्याः प्रजां मुञ्चतु मृत्युपाशात्॥१९॥ तदिदं राजा वरुणोनुमन्यतां यथेदं स्त्री पौत्रमगन्म रुद्रियाय स्वाहेति, हिरण्यगर्भ" इत्यष्टाभिः प्रत्यृचमाज्याहुतीर्जुहुयात् ॥ २० ॥ येन च कर्मणेच्छेत्तत्र जयान् जुहुयात् ॥ २१ ॥ जयानां च श्रुतिस्थां यथोक्ताम् ॥ २२ ॥ "आकूत्यै त्वा स्वाहा" 'भूत्यै त्वा स्वाहा' ॥ प्रयुजे त्वा स्वाहा' ॥ नभसे त्वा स्वाहा" ॥ "अर्यम्णे त्वा स्वाहा" ॥ समृद्ध्यै त्वा स्वाहा' । 'जयायै त्वा स्वाहा' । 'कामायै त्वा स्वाहा' । इत्यृचा 'स्तोमं प्रजापतये' इति च ॥ २३॥ शुचिः प्रत्यङ्मुखः तां समीक्षस्वेत्याह ॥ २४ ॥ तस्यां समीक्षमाणायां जपति ॥ २५ ॥ मम व्रते ते हृदयं दधातु मम चित्तमनुचित्तं ते अस्तु' । 'मम वाचमेकमना जुषस्व प्रजापतिस्त्वा नियुनक्ति मह्यम् । इति ॥ २६ ॥ कानामासो'स्याह ॥ २७ ॥ नामधेये प्रोक्ते-'देवस्य त्वा सवितुः

प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यां हस्तं गृह्णाम्यसा' विति हस्तं गृह्णन्नाम गृह्णाति ॥ २८ ॥ प्राङ्मुख्याः प्रत्यङ्मुख ऊर्ध्वस्तिष्ठन्नासीनायाः दक्षिणमुत्तानं दक्षिणेन नीचारिक्तमरिक्तेन "यथेन्द्रो हस्तमग्रहीत्सविता वरुणो भगः । गृह्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं मया पत्या जरदृष्टिर्यथासत् ॥ भगोऽर्यमा सविता पुरन्धिर्मह्यं त्वादुर्गार्हपत्याय देवाः । याग्रे वाक्समभवत्पुरा देवासुरेभ्यः । तामद्य गाथां गास्यामो या स्त्रीणामुत्तमं मनः । सरस्वति प्रेदमिव सुभगे वाजिनीवति । या त्वा विश्वस्य भूतस्य भव्यस्य प्रगायाम्यस्या अग्रतः । अमोहमस्मि सा त्वं सा त्वमस्या अप्यमोहं । द्यौरहं पृथिवीत्वमृक्त्वमसि सामाहं रेतोऽहमस्मि रेतो धत्तं तावेव विवहावहै पुंसे पुत्राय कर्तवै श्रिये पुत्राय वैधवै रायस्पोषाय सुप्रजास्त्वाय सुवीर्यायेति ॥ २९ ॥ अग्निदक्षिणमानीयाग्नेः पश्चात् एतमश्मानमातिष्ठत"मश्मेव युवां स्थिरौ भवतम् ॥ ३० ॥ कृण्वन्तु विश्वे देवा आयुर्वां शरदः शतमि"ति दक्षिणाभ्यां पद्भ्यामश्मानमास्थापयतः ॥ ३१ ॥ "यथेन्द्रः सहेन्द्राण्या अवारुहद्गन्धमादनात् । एवं त्वमस्मादश्मनोऽवरोहस्व समे पादौ प्रपूर्व्यायुष्मती कन्ये पुत्रवती भवे"त्येवं त्रिरास्थापयति ॥ ॥ ३२ ॥ चतुः परिणयति समितं सङ्कल्पेथामिति ॥ ३३ ॥ पर्याये पर्याये ब्रह्मा ब्रह्मजपं जपेत् ॥ ३४ ॥ इति वाराहगृह्ये चतुर्दशः खण्डः ॥

यज्ञशाला में कुण्ड से अलग पूर्व को पांच और उत्तर को एक रेखा करके वहां कुछ मट्टी फेंक जल सेंचन करके गोलाकार या चौकोण स्थण्डिल वेदी को गोबर से लीपकर अग्निमन्थन करके सम्मुख रक्खे। वहां ब्रह्मा के लिये आसन ठीक करे। दाभों के दो प्रादेश मात्र पवित्रों को तीन दाभों से "वैष्णवेस्थः" मन्त्र द्वारा काढ़कर अग्निदेवता के लिये स्थालीपाक पकावे। "इमं स्तोममर्हत०" मंत्र से अग्नि सब ओर झाड़ कर, सब ओर जल सेचन कर कुशों से परिस्तरण कर अग्नि के पश्चिम भाग में एक पर्त पूर्व को अग्रभाग करके एक मुट्ठा कुश बिछावे॥ अग्नि के सब ओर कुश बिछाने की रीति यह है कि अग्निकुण्ड से उत्तर और दक्षिण में पूर्व को अग्रभाग करके और पूर्व पश्चिम में उत्तर को अग्रभाग करके बिछावे। अग्नि के दक्षिण में ब्रह्मा के लिये और ब्रह्मा से पश्चिम में यजमान के लिये और यजमान से दक्षिण पश्चिम की ओर यजमान की पत्नी के लिये उनके आसन पर कुछ बिछावे।

वेदि से उत्तर और दक्षिण में पूर्व को अग्रभाग करके अग्नि से पूर्व में उत्तर को तथा पश्चिम में दक्षिणों के साथ मिलते हुए उत्तराग्र बिछावे॥ अग्नि से दक्षिणभाग में ब्रह्मा के लिये बिछाये आसन पर और ब्रह्मा से पश्चिम में यजमान के आसन पर और यजमान से पश्चिम में पत्नी के आसन पर कुछ बिछावे। ब्रह्मा, यजमान और पत्नी से दक्षिण में आम का पल्लव शाखा को धारण के लिये और उससे पश्चिम में जलभरे कलश को धारण करने वाले के लिये कुछ बिछावे और इन से पश्चिम २ को लाजा धारण करने वाली सौभाग्यवती स्त्री और हल का जूआ धरने वाले के लिये कुछ बिछावे॥ फिर "स्योना पृथिवि०" मन्त्र से शाखा धार आदि चारों को स्थापित करके पहिले से नवनामी हों तो शमी (छोंकर) वृक्ष की शम्या प्रादेश मात्र बनाकर गोशाला के भीतर अग्नि को प्रज्वलित करके आगे कही रीति से वर अपनी स्त्री को अग्नि के पास लावे। पत्नी के दुपट्टे का छोर पकड़ के "अघोरचक्षु०" इत्यादि मन्त्र पढ़े पश्चात् दोनों बाहु से उठा कर लावे। खडे हुए रथ या शकट (छकड़ा) उत्तर से दक्षिण की ओर

परिक्रमा कर या अग्नि और गाड़ी के बीच से निकल के युग (जूआं) के दोनों भाग बैलों के कन्धों पर रहते हैं उनके बीच को "धुर" कहते हैं उस धुर और शम्या (सैल) के छिद्र के बीच उत्तर को नीचे करके कन्या को स्थिर करके शम्या को छिद्र से निकाल के उस युग छिद्र में सोना धर के "हिरण्यवर्णाः०" इत्यादि तीन ऋचा पढ़ २ के ऊपर से कुशों या आम के पत्तों से कन्या के शिर पर अभिषेक करके और इसी अवसर में "बाण शब्दं कुरुत" ऐसे वाक्य द्वारा बाजे बजाने की आज्ञा देवे। फिर पत्नी को अग्नि के पास उठाकर लावे और "या अकृन्तनू०" इत्यादि मन्त्र पढ़ के चीरेदार साड़ी पत्नी को पहनावे। उसके पश्चात् पत्नी के अन्वारम्भ करने पर प्रजापति और इन्द्र देवता के लिये दो आघार, अग्नि और सोम देवता के लिये दो आज्य भाग की आहुति देकर "अग्नये जन०" मंत्र से वेदिस्थ प्रज्वलित अग्नि के उत्तरार्द्ध में 'सोमाय जन०" से दक्षिणार्द्ध में और "गन्धर्वायजन०" से बीच अग्नि में आहुति देवे॥ पश्चात् "युक्तो वह०" यदा कृतं० इन दो मंत्रों से अग्नि देवता को युक्तनाम सम्बोधित करके जिस तिथि में वह काम विवाह होना हो उस दिन जो नक्षत्र हो उस नक्षत्र का जो देवता हो और प्रतिपद आदि जो तिथि हो उसके नाम से और उस तिथि के देवता के नाम से और उस समय जो ऋतु हो उस ऋतु का जो देवता हो उन सबके नाम छः आहुति देवे। फिर "सोमोददद०" इत्यादि ऋचाओं से एक आहुति देकर "हिरण्यगर्भः०" इत्यादि आठ ऋचाओं से घी की आठ आहुति देवे। जिस कर्म्म से कार्य की सिद्धि चाहता हो वहां २ जया होम करे। जया संज्ञक आहुतियों की यथोक्त श्रुति हैं कि शत्रु के विनाश के लिये भी जया होम होता है। "आकूत्यै०" इत्यादि जया होम की आठ आहुति देकर "ऋचास्तोम०" मन्त्र से नवमी और "प्रजापतये" स्वाहा मंत्र से दशमी आहुति देवे॥ पवित्र हुआ वर पश्चिम को मुखकरके पत्नी से कहे कि (समीक्षस्व) मुझे देखो वह पत्नी वर को देखती हो तब वर "मम व्रते ते०" इत्यादि मंत्र को पत्नी की ओर देखता हुआ पढे॥ इसके पश्चात् वर कन्या से कहे कि "कानामा-

सि" तुम्हारा क्या नाम है ? जब कन्या अपना नाम बोले तब "देवस्यत्वा"० मन्त्र पढके निम्न रीति कन्याका हाथ पकड़े और मन्त्रके अन्त में पढे हुए "असौ" पद की जगह कन्या का नाम सम्बोधनान्त कहे । कन्याका मुख पूर्व को वर का मुख पश्चिम को हो, कन्या बैठी हो और वर खड़ा हो, कन्या का हाथ रीनाउत्तान उपर को और वरके दहिने हाथ में कोई फल आदि हो यों अपने दहिने हाथ से कन्या का दहिना हाथ अंगुठा अङ्गुलियों सहित पकड़के "यथेन्द्रो०" इत्यादि मन्त्र पढ़े ॥ अन्य कोई पुरुष कन्या को वर से दक्षिण में और अग्नि से पश्चिम में खड़ी करके कन्या वर दोनों के दहिने पगों को एक पत्थर की शिलापर रखवाना हुआ "एतमश्मान०" इत्यादि मन्त्र पढ़े । फिर "यथेन्द्रः०" मन्त्र को पढ़के दोनों के पगों को नीचे उतरवावे । पश्चात् उक्त प्रकार "एतमश्मा०" मन्त्र से फिर पाषाण शिलापर दोनों के दहिने पगों को धरा के "यथेन्द्र०" मन्त्र से फिर उतरवावे ऐसे दो वार करके ॥ इसके अनन्तर चार वार अग्नि के प्रदक्षिणा परिक्रमा आगे कहे लाजा होम के साथ कन्या वर दोनों करें ॥ और "समितं संकल्पेथां०" मन्त्र का प्रत्येक परिक्रमा के साथ एक २ वार ब्रह्मा जप करे ॥ सू० १-३४ ॥ यह चौदहवां खण्ड पूरा हुआ ॥ १४ ॥

ततो यथार्थं कर्मसंनिपातो विज्ञेयः ॥ अर्यम्णेऽग्नये पूष्णेऽग्नये वरुणाय च व्रीहीन्यवान्वा निरुप्य प्रोक्ष्य लाजाभृज्जति मात्रे प्रयच्छति "सजाताया अविधवायै ॥ १ ॥ अथास्यै द्वितीयं वासः प्रयच्छति ॥२॥ तेनैव मन्त्रेण ॥ दर्भरज्ज्वा इन्द्राण्याः सन्नहनमित्यन्तौ समायम्य पुमांसं ग्रन्थिं बध्नाति ॥ ३ ॥ सं त्वा नह्यामि अद्भिरोषधीभिः । सं त्वा नह्यामि प्रजया धनेन सा सन्नद्धा सुनुहि भागधेयम्"। इत्यन्तरतो वस्त्रस्य योक्त्रेण कन्यां सन्नह्यति ॥४॥ अथैनामुपकल्पयते—शूर्पं लाजाः इषीकाश्मानं अञ्जनम् ॥

चतसृभिः सतूलाभिरित्येकैकयाककुभस्याञ्जनस्य सन्निकृष्य "वृत्रस्यासि कनीनिके"ति भर्तुर्दक्षिणमक्षि त्रिः प्रथममाङ्क्ते तथा परम् ॥५॥ तथा पत्न्याः शेषेण तूष्णीम् ॥ ६ ॥ दिशि शलाकाः प्रविद्धयति । "यानि रक्षांस्यभितो व्रजन्त्यस्या वध्वा अग्निसकाशमागच्छन्त्याः । तेषामहं प्रतिविद्धयामि चक्षुः स्वस्ति वध्वे ॥ भूतपतिर्दधास्त्वि"ति ॥ ७ ॥ लाजाः पश्चादुपसाद्य शमीपर्णैः संसृज्य शूर्पे समं चतुर्धा विभज्याग्रेणाग्निं पर्याहृत्य लाजाधार्थै प्रयच्छति ॥ ८ ॥ लाजा भ्राता ब्रह्मचारी वा अञ्जलिनाऽञ्जल्योरावपति ॥ ९ ॥ उपस्तरणाभिघारणैः सम्पातं तावच्छिन्नैर्जुहुतः ॥ १० ॥ अर्यमणं नु देवं कन्याऽग्निमयक्षत । स इमां देवो अर्यमा प्रेतो मुञ्चातु नामुतः स्वाहा । तुभ्यमग्ने पर्यवहन् सूर्यां वहतुना सह । पुनः पतिभ्यो जायां दा अग्ने प्रजया सह । पुनः पत्नीमग्निरदादायुषा सह वर्चसा । दीर्घायुरस्या यः पतिर्जीवाति शरदः शतम् । इयं नार्युपब्रूते लाजानावपन्ति तौ । दीर्घायुरस्तु मे पतिरेधन्तां ज्ञातयो मम" इति ॥ ११ ॥ एवं "पूषणं नु देवं वरुणं नु देवम् । येन द्यौरुग्रा"—इत्यादय उद्वाहे होमाः जयाभ्यातानाः सन्ततिहोमं राष्ट्रभृतश्च ॥ १२ ॥ "आकूताय स्वाहे"ति जयाः ॥ १३ ॥ प्राचीदिग्वसंत ऋतुरित्याभ्यातानाः ॥ १४ ॥ प्राणदपानं सन्तन्वि"ति सन्ततिहोमाः ॥ १५ ॥ ऋताषाडृतधामेति" राष्ट्रभृतश्च ॥

॥१६॥ "आतारमिन्द्रंविश्वादित्या" इति माङ्गल्ये ॥ लाजाः कामेन चतुर्थं स्विष्टकृनमिति ॥१७॥ अथैनां प्राचीं सप्तपदानि प्रक्रमयति ॥१८॥ एकमिषे । द्वे ऊर्जे । त्रीणि प्रजाभ्यः । चत्वारि रायस्पोषाय ॥ पञ्च भवाय ॥ षडृतुभ्यः ॥ सखा सप्तपदी भव । सुमृडीका सरस्वती । मा ते व्योम संदृशि । विष्णुस्त्वामुन्नयत्वि"ति सर्वत्रानुषजति ॥१६॥ पश्चादग्नेः रोहिते चर्मण्यानडुहे प्राग्ग्रीवे लोमतो दर्भानास्तीर्य तेषु वधूमुपवेशयति । अपि वा दर्भेष्वेव । "इमं विष्यामि वरुणस्य पाशं यज्जग्रन्थ सविता सत्यधर्मा । धातुश्च योनौ सुकृतस्य लोकेऽरिष्टां मा सह पत्या दधातु" । इति योक्त्रपाशं विषाय वाससोऽन्ते बध्नाति ॥ २० ॥ अनुमतिभ्यां व्याहृतिभिश्च "त्वं नो अग्ने मनो ज्योतिः त्रयस्त्रिंशत्तन्तवः अयाश्चाग्ने । असीति च शमीमयीस्तिस्रोक्ताः समिधः ॥ २१ ॥ समुद्रादूर्मिरि"त्येताभिस्तिसृभिः स्वाहाकारान्ताभिरादधाति ॥ २२ ॥ अक्षतसक्तूनां दध्नश्च समवदाय "इदं हविः प्रजननं मे" इति च हुत्वा ॥२३॥ इमं स्तनं मधुमन्तं धयायां प्रपीनमग्ने सलिलस्य मध्ये । उत्सञ्जुषस्व मधुमन्तमूर्मिं समुद्र्यं सदनमाविवेश स्वाहा" इति परिधिविमोकमभिजुहोति ॥ २४ ॥ "अन्नपते" इत्यन्नस्य जुहुयात् वि ते मुञ्चामि रशनां विरश्मीन्" इति च हुत्वा पवित्रेऽनुप्रहृत्य आज्येनाभिजुहोति ।२५। "एधिषीमही"ति समिधमादधाति ॥२६॥ "समिदसि समेधिषी"ति द्वितीं-

याम् ॥ २७ ॥ आपो अद्यान्वचारिषमि"त्युपतिष्ठते ॥२८॥ कुम्भादुदकेन "पुनन्तु मा पितर" इत्यनुवाकेन मार्जयन्ते ॥ २९ ॥ आपोहिष्ठीयाभिरित्येके" ॥ ३० ॥ वरो दक्षिणा ॥ ३१ ॥ इति वाराहगृह्ये पञ्चदशः खण्डः ॥१५॥

जिस कर्म का जहां प्रयोजन हो उस अवसर में उसका अनुष्ठान करना चाहिये । अर्थात् सूत्रकार किसी अन्यत्र करने के काम को अन्यत्र भी कह देते हैं पर करने वाले को अवसर देख कर यथावसर करना चाहिये । अर्यमाग्नि, वृषाग्नि और वरुणाग्नि देवता के लिये लाजा भूजने के अर्थ धन या जौ का ग्रहण करके लाजा भूंजे ॥ वे भूंजे हुए लाजा या जौ कन्या की माता को या जो सोहागिन स्त्री हो ऐसी कन्या माता की सहोदर बहिन (मौसी) को देवे ॥ इसी के अनन्तर इसी मन्त्र से कन्या को ऊपर से ओढ़ने के लिये दूसरा वस्त्र देवे ॥ फिर " इन्द्राराया: संहनन० " मंत्र को पढ़ के आचार्य्य दाभ की रस्सी के दोनों छोर मिला कर प्रदक्षिण रीति से गांठ देवे ॥ फिर "संत्वा नह्यामि०" मन्त्र पढ़ के कन्या के कटिभाग में पहने हुए साड़ी वस्त्र बीच (दोनों ओर ऊपर नीचे वस्त्र रहें) में वह दर्भ रज्जु प्रदक्षिण लपेटे । यह पत्नी की दीक्षा के लिये मेखला है । इसके अनन्तर सूप, खीले, दाभ, या मूंज की चार सींकें, पत्थर की शिला और आंखों में लगाने का सुरमा इन सब को सम्हाल के रक्खे । जिनमें से मूंज और अग्रभाग में फूला धुआं लगा हुआ ऐसी पूरी लम्बी दाभ की या मूंज की चार सीकों के छोरे ठीक करके उन में एक एक में पहाड़ी सुरमा लगा के पहिले कन्या एक सींक से वर के दहिने नेत्र में "वृत्रस्यासि०" मंत्र से तीन वार सुरमा लगावे और इसी प्रकार बांये नेत्र में दूसरी सींक से लगावे फिर शेष बची दो सीकों से वर पत्नी की दहिने और बायें नेत्रों में विना मला सुरमा लगावे ॥ फिर 'यानि रक्षांसि०' मन्त्र पढ़ के सब दिशाओं में एक २ सींक (जिनसे सुरमा लगाया है) प्रदक्षिण क्रम से वर फेंके । इसके पश्चात् लाजा नाम धान की खीलों को

अग्नि से पश्चिम में धर के उनमें शमी वृक्ष के पत्ते को मिला कर उनको
सूप में चार भाग मिला कर अलग २ रक्खे। अग्नि के उत्तर पूर्व से प्रदक्षिणा
नाके सूप को दक्षिण की ओर खड़ी लाजा धरने वाली रथी को देवे ॥
कन्या का भाई या ब्रह्मचारी विद्यार्थी कन्या वर दोनों की मिलाई हुई
अञ्जली में लाजा अपनी अञ्जली में लेकर गिरावे। लाजा गिराने से पहिले
अञ्जली में उपस्तार रूप घी लगावें फिर लाजा गिरा के खीलों के ऊपर
ते घी छोड़े वह, "अभिघारण" कहाता है । फिर बीच में न रुकते हुए
ार बांध कर "अर्यमणं०" आदि मन्त्रों से दोनों कन्या वर होम करें।
'अर्यमणंनु०" मन्त्र से लेकर "प्रजया सह" मन्त्र तक पहिले वर पढ़े ॥
फेर 'पुनः पत्नीम्०" मन्त्र को अध्वर्यु पढ़े। "इयंनार्युपब्रूते०" मन्त्र
ो कन्या पढ़े । चारों मन्त्रों के पाठ के साथ धीरे २ निरन्तर दोनों कन्या
ार लाजा गिराते जावें । यह एक आहुति हुई ॥ फिर पूर्व लिखी अग्नि की
रिक्रमा दोनों एक बार करें ॥ परिक्रमा के साथ "समितं०" मन्त्र को
ह्मा पढ़े अर्थात् वहां क्रम यह है कि पहिले वेदि में रेखा करे, अग्नि
थापन, दर्भ पवित्र बनाना, अग्नि का परिसमूहन आदि स्थापन तक
ुव आदि पात्रस्थापन, लाजा सुवर्ण आदि सूपादि का स्थापन फिर
ाज्य ग्रहणादि समिद् आधान तक पूर्व कहे अनुसार फिर "ऋचाओं
'०" मन्त्र तक आघार होमादि । और हस्त ग्रहण तक करके शिला स्था-
न लाजा होमादि करे। फिर पूषा और वरुण का ऊह, अर्यमा के स्थान
करके "वृषणं नु देवं कन्या०" इत्यादि मन्त्रों स दो वार लाजा होम
रिक्रमा और अश्मारोहण, अवरोहण फिर करें। "येन द्यौरुग्रा०"
त्यादि होम विवाह में करे और "आकूताय०" इत्यादि पूर्वोक्त जया होम
प्राचीन दिगवं०" इत्यादि अभ्यातान "प्राणापानं०" इत्यादि सन्तति
म और "ऋताषाड्०" इत्यादि बारह आहुति राष्ट्रभृत होम भी विवाह में
रे ॥ "त्रातारमिन्द्रं०" 'विश्वादित्या०' इन दो मन्त्रों से मङ्गल आहुति
रे। फिर "अर्यमणमनु०" इत्यादि पूर्वोक्त मन्त्रों में 'अर्यमा' के स्थान में
ाम' शब्द का ऊह करके 'कामंनुदेवं०' चौठी स्विष्ट कृत्त स्थाना

लाजा होम करे ॥ फिर इस कन्या को एक मिषे०' इत्यादि के आगे भवसु-मृडीका०' मन्त्र से 'मुन्नमतु' मन्त्र तक मन्त्र सब में लगा २ के एक २ मन्त्र से एक पग पूर्व को चलावे । उसके पश्चात् अग्नि से पश्चिम में लाल बैल के चर्म को पूर्व को शिर और ऊपर को लोम करके बिछावे उस पर दाभ डाल कर वधू को बैठावे या केवल दाभों पर बैठावे । फिर 'इमं विष्यामि०' मन्त्र को पढ़ के कन्या के कमर में बान्धी हुई दाभ की रस्सी को खोल कर ओढ़े हुए वस्त्र के छोर में बान्ध देवे ॥ फिर 'अनुमति०' के लिये दो, तीन व्याहृति और त्वं नो अग्ने० मन्त्र से तीन आहुति देवे । इसके पश्चात् शमी वृक्ष की तीन समिधा घी में डुबो के 'समुद्रा दू०' इत्यादि स्वाहाकारान्त तीन मन्त्रों से अग्नि में चढ़ावे ॥ पश्चात् विना कटे जौ के सत्तू और दही में से दो २ आहुति के अंश अवदान लेकर 'इदंहविः प्र०' मन्त्र से होम करके पवित्रों में घी लगा के पवित्रों का होम कर दे और 'विते मुञ्चामि०' इत्यादि मन्त्रों से घी की आहुति करे । पश्चात् 'एधोऽसि०' मन्त्र से एक और समिदसि०" मन्त्र से दूसरी समिधा अग्नि में चढ़ावें । फिर आपोअद्यान्व०" मन्त्र से अग्नि का उपस्थान करे । फिर जल भरा घड़ा कलशधारण करने वाले के कलश से दाभ या आम के पत्तों द्वारा जल ले २ कर 'आपोहिष्ठा०' आदि तीन मन्त्रों से पत्नी का अभिषेक करे । और श्रेष्ठ गौ दक्षिणा में आचार्य्य को देवे । सू० १—२१ ॥ यह पन्द्रहवां खण्ड पूरा हुआ ॥ १५ ॥

"सुमङ्गलीरियं वधूरिमां समेत पश्यत । सौभाग्यमस्यै दत्त्वायाथास्तं विपरेतन ॥" इति प्रेक्षकान्व्रजतोऽनुमन्त्रयते ॥ १ ॥ अत्रैव सीमन्तं करोति ॥ २ ॥ त्रिश्वेतया शलल्या समूलेन वा दर्भेण ॥ ३ ॥ "सेनाहनामित्यै"तया ॥ अथाभ्यञ्जलि । अभ्यज्य केशान् "सुमनस्यमानाः प्रजावरीर्यशसे अघोराः । शिवा भव भर्तुः श्वशु-

रस्या वदायुष्मती श्वश्रुमती चिरायुः" इति ॥४॥ जीवोर्णयोपसमस्यति ॥ ५ ॥ "समस्य केशान्वृजिनानघोरान् शिवा सखिभ्यो भव सर्वाभ्यः। शिवा भव सुकुलोह्यमाना शिवा जनेषु सह वा जनेषु"। इति ॥ ६ ॥ अथैतौ दधि मधु समश्नुतः ॥७॥ यद्वा हविष्यं स्यात् ॥८॥ तस्य स्वस्ति वाचयित्वा "समानावाकूतानी"ति सह जपन्ति ॥ उभौ सह प्राश्नीतः ॥ ९ ॥ इति वाराहगृह्ये षोडशः खण्डः ॥

जो लोग विवाह देखने को आये हों और फिर लौट कर अपने २ घर को जाते हों उनको देखता हुआ "सुमङ्गली०" मंत्र पढ़े। इसी अवसर में वह अपनी पत्नी का सीमंतोन्नयन करे। अर्थात् उसके मांग को भरे। तीन जगह श्वेत चिन्ह वाले सेही के कांटे से या जड़ सहित उखाड़े दाभ के गुच्छे से "सेनाहनाम०" इस ऋचा को पढ़के मांग के केश को दोनों ओर को करे पश्चात् "अभ्यज्य केशान्०" मंत्र पढ़ के बालों में तेल लगावे और कंकत से काढ़े। फिर जीते हुए मेढ़ा की ऊन से बनाये डोरे के साथ बालों को "समस्य केशान०" मन्त्र पढ़ के गूंथे अर्थात् वेनी बना के बांध देवे। पश्चात् दोनों पति पत्नी दही और मधु मिला कर एक साथ खावें या हविष्यान्न खावें। खाने से पहिले पुरोहित आदि से कहे "स्वस्ति ब्रूहि०" तब ब्राह्मण मन्त्र सहित स्वस्ति कहे। फिर ब्राह्मण सहित तीनों "समानो वा०" मन्त्र को साथ ही पढ़ें॥ फिर पति पत्नी दोनों दही शहद मिला के या हविष्यान्न को साथ २ खावें॥ सू०१-९॥ यह सोलहवां खण्ड पूरा हुआ॥ १६॥

पुण्याहे युङ्क्ते ॥१॥ "युञ्जन्ति ब्रध्नमि"ति द्वाभ्यां युज्यमानमनुमन्त्रयते–दक्षिणमथोत्तरम् ॥ २ ॥ अहतेन वाससा दर्भैर्वा रथं संमार्ष्टि ॥ ३ ॥ अक्षौ न्यङ्गावभितो

रथम् ॥ ये ध्वान्ता वाताग्निमभि ये सञ्चरन्ति ॥४॥ दूरे हेतिः पतत्री वाजिनो वांस्ते नोऽग्नयः पप्रयः पालयन्तु ॥ इति चक्रेऽभिमन्त्रयते ॥५॥ "वनस्पते विड्वङ्ग" इत्यधिष्ठानम् ॥ सुकिंशुकं शल्मलिं विश्वरूपं हिरण्यवर्णं सुवृतं सुचक्रम् । आरोह सूर्यम् ॥६॥ अमृतस्य लोकं स्योनं पत्ये वहतुं कृणुष्व इत्यारोहयति ॥ ७ ॥ "अनुमायन्तु देवता अनु ब्रह्म सुवीर्यम् । अनु क्षत्रं तु यद्बलमनु मा मैतु यद्यश" इति प्राक् अभिप्रायाय प्रदक्षिणमावर्तयति ॥८॥ "प्रति मायन्तु देवताः प्रति ब्रह्म सुवीर्यम् । प्रति क्षत्रं तु यद्बलं प्रति मामैतु यद्यशः" ॥ इति यथाऽक्तं यन्तमनुमन्त्रयते ॥ ९ ॥ "अमङ्गल्यं चे"त्यतिक्रामति ॥१०॥ "नमो रुद्राय ग्रामसद" इति "ग्रामे ॥ इमा रुद्रायेति" च ॥११॥ "नमो रुद्रायैकवृक्ष सदे" इत्येकवृक्षे-"ये वृक्षेषु शष्पिञ्जरा" इति च ॥१२॥ "नमो रुद्राय श्मशानसद" इति श्मशाने—"ये भूतानामधिपतय" इति च ॥ १३ ॥ "नमो रुद्राय चतुष्पथसद" इति चतुष्पथे "ये पथां पथि रक्षम्" इति च । "नमो रुद्राय तीर्थसद" इति तीर्थे । "ये तीर्थानि प्रचरन्तीति च ॥ १४ ॥ यत्रापस्तरितव्या आसीत्-" अति समुद्राय वैणवे सिंधूनां पतये नमः । नमो नदीनां सर्वासां पत्ये विश्वाह्यजुषतां विश्वकर्मणामिदं हविः स्वः स्वाहे" त्यप्सु उदकाञ्जलिं निनयति ॥ १५ ॥ अमृतं वा आस्ये जुहोम्यायुः प्राणेऽप्यमृतं ब्रह्मणा सह मृत्युं तरति ॥१६॥

"प्रासहादिति रिष्टिरि"ति जपेत् ॥ १७ ॥ यदि रथाक्षः शम्याणि वा रिष्येत अन्यद्वा रथाङ्गं तत्रैवाग्निमुपसमाधाय जयप्रभृतिभिर्हुत्वा " सुमङ्गलीरियं वधू " रिति जपेत् । " वध्वा वधूं समेत पश्यत ॥ १८ ॥ व्युत्क्राम पथां जरितां जवेन शिवेन वैश्वानरः " इत्यस्याग्रतः ॥ १९ ॥ आचार्यो येन येन पथा प्रयाति तेन तेन सह ॥ इत्यभावेव व्युत्क्रामतः गोभिः सह ॥ २० ॥ अस्तमिते ग्रामं प्रविशंति ॥ २१ ॥ ब्राह्मणवचनाद्वा ॥ २२ ॥ इति वाराहगृह्ये सप्तदशः खण्डः ॥ १ ॥

अब शुभ नक्षत्र और शुभ ग्रह युक्त पुण्य दिन में अपने घर पत्नी को ले जाने के लिये रथादि को जोड़े । जब कोई अध्वर्यु आदि रथ में घोड़े या बैल को जोड़ना हो, तब उसकी ओर देखता हुआ वर "युञ्जन्ति ब्र०" मंत्र पढे, पहिले दहिने को जोडते समय फिर बायें को जोड़ते समय अलग २ दो वार मन्त्र पढ़े । इसके पश्चात् "अङ्कन्यङ्कीव०" मन्त्र पढके रथ के पहियों का अभिमन्त्रण करे । पहिले दहिने का फिर बांये का । "वनस्पते०" मन्त्र पढके पत्नी को अध्वर्यु आदि के द्वारा रथ पर चढवावे । फिर आप रथपर बैठके "अनुमायन्तु०" मन्त्र पढके पहिले थोड़ा पूर्व को रथ चलाकर प्रदक्षिण क्रम से जाने के मार्ग पर फेर कर लावे । ठीक वरको जाने के रास्ते पर रथ चलता हो, तब रथको देखता हुआ "प्रतिमायन्तु देव० मन्त्र को पढ़े ॥ यदि मार्ग में मरघट कूड़ा आदि का ढेर और अनिष्टघृणित अमङ्गल वस्तु के पास होके निकलना पड़े तो "अनुमायन्तु०" इत्यादि मन्त्र का जप करे । यदि ग्राम में होकर निकले तो "नमो रुद्राय ग्राम०" और "इमारुद्राय०" इन दो मन्त्रों का जप करे । मार्ग में एक वृक्ष पड़े तो "नमो रुद्रायैक वृक्षसदे०' और "ये वृक्षेषु०" दो मन्त्रों को जपे॥ यदि मार्ग में मरघट पड़े तो "नमोरु०" । ये भूतानां०" दो मन्त्रों को जपे । यदि

चौराहा पड़े तो "नमो रुद्राय । ये पथां०" मंत्रों को जपे । यदि मार्ग में कोई घाट पड़े तो "नमो रुद्राय०" । ये तीर्थानि०" दो मन्त्रों को जपे ॥ यदि नदी आदि पार उतरने योग्य जलाशय आवे तो अञ्जुली से जलभर कर "समुद्राय वै०" मंत्र पढके जलाशय में अञ्जुली के जलका होम कर देवे । फिर तीन वार अपने शिर आदि अङ्गों पर जल से मार्जन करके "अमृतं वा आस्ये०" मंत्र पढके तीन वार आचमन करे । यदि नौका पर चढ़कर पार उतरना हो तो नौका पर चढ़ा हुआ "सुत्रामाणं०" मन्त्र का जप करे ॥ यदि मार्ग में चलते २ रथकी धुरी सैल या आरा आदि कोई रथ का अङ्ग, टूट फूट जावे तो (उसको बढ़ई से बनवाना यह भिन्न लौकिक काम है उसको तो सबही तुल्य करे) पर विवाह के वेदीका अग्नि साथ (लाना चाहिये) लाया हो उसको प्रज्वलित कर आधार, आज्यभाग के पश्चात् जयादि होम करके "सुमङ्गलीरि०" मन्त्र को पत्नी सहित पढे । "इमां समेत०" के स्थान में "वधूं समेत'० कहे ॥ फिर स्त्री पुरुष दोनों "व्युत्क्राम पथां०" मंत्रको पढके रथ से उतरे और अलग २ चले । फिर बैठ जावे । सूर्य्य नारायण के अस्त होने पर और जंगल से गौओं के घर आने के साथ विदा कराके बराती लोग गांव में घुसें । यदि दिन या अधिक रात जाने का समय हो तो ब्राह्मण की आज्ञा लेकर गांव में जावें । सू० १—२२॥ यह सत्रहवां खण्ड पूरा हुआ ॥ १७॥

अस्मिन्नहस्सन्धौ गृहान् प्रपादयीत ॥१॥ "प्रतिब्रह्मन्नि"ति प्रत्यवरोहति ॥ २ ॥ मङ्गलानि प्रादुर्भवन्ति ॥३॥ गोष्ठात्संतता मूलपराजितं स्तृणाति ॥ ४ ॥ रथादध्योपसादनात् । "येष्वध्येति प्रवसन् येषु सौमनसं महत् । तेनोपह्व्यामहे तेनो जानन्त्वागतम् ।।इति तयाऽभ्युपैति॥५॥ "गृहानहं सुमनसः प्रपद्ये वीरं हि वीरवतः सुशेवाः । इरां वहन्तीं घृतमुक्षमाणास्तेष्वहं समना संविशाम" । इत्य-

भ्याहिताग्निं सोदकं सौषधमावसथं प्रतिपद्येत । रेवत्या रोहिण्या मूलेन वा यद्वा पुण्योक्तम् ॥ ६ ॥ पश्चादग्नेः रोहिते चर्मण्यानडुहे प्राग्ग्रीवे लोमतो दर्भानास्तीर्य तेषु वधूमुपवेशयति । अपि वा दर्भेष्वेव ॥ ७ ॥ अथास्या ब्रह्म-चारिणं जीवपितृकं जीवमातृकमुत्सङ्गमुपवेशयेत् ॥ ८ ॥ फलानामञ्जलिं पूरयेत् तिलतण्डुलान्वा ॥ ९ ॥ "अच्युता ध्रुवा ध्रुवपत्नी ध्रुवं पश्येम विश्वत" इति ध्रुवं जीवन्तीं सप्तर्षीनरुन्धतीमिति दर्शयित्वा प्राजापत्येन स्थालीपाकेनेष्ट्वा जयप्रभृतिभिश्चाज्यं पुरस्तात्स्विष्टकृतः आज्यशेषे दध्या-सिच्य "दधिक्राव्णोऽकारिषमि"ति दध्नस्त्रिः प्राश्नाति ॥ १० ॥ चक्रीमिवाऽनडुहः पदं मामेवान्वेतु ते मनो मां च पश्यसि सूर्यं च । अन्येषु मनस्कृथा सोमेनादित्याः चाक्रवाकं संवननं तन्नौ संवननं कृतमित्यवशिष्टं पत्न्यै प्रयच्छति ॥ १२ ॥ तूष्णीं सा प्राश्नाति ॥१३॥ अपराह्ने पिण्डपितृयज्ञः ॥१४॥ स व्याख्यातः।१५। संवत्सरं ब्रह्मचर्यं चरतः द्वादशरात्रं वा ॥ १६ ॥ अथास्यै गृहान् विसृजेत् ॥ १७ ॥ योक्त्रपाशं विषाय तौ सन्निपातयेत् ॥ १८ ॥ "अपश्यं त्वा मनसा चेकितानं तपसो जातं तपसो विभू-तम् । इह प्रजामिह रयिं रराणः प्रजायस्व प्रजया पुत्रकाम। अपश्यं त्वा मनसा दीध्यानां स्वायां तनूं ऋत्विये नाथ-मानाम् । उप मामुच्चा युवतिर्बभूयाः प्रजायस्व प्रजया पुत्रकामे । प्रजापतिस्तन्वं मे जुषस्व त्वष्टा देवैः सहमान

इन्द्रः । इन्द्रेण देवैर्वीरुधः संविदानां बह्वना पुंसां पितरः स्यावः ॥ अहं प्रजा अजनयं पृथिव्यामहं गर्भमदधामोष धीषु । अहं विश्वेषु भुवनेष्वन्तरहं प्रजाभ्यो बिभर्षि पुत्रान् ।" इति स्त्रिया दीव्यत्या सञ्जपति ॥ १८ ॥ "कर-दि"ति "भसद"भि" मृशति ॥ १९ ॥ जननी"त्युपजन-नम् ॥ २० ॥ बृहदिति जातम् ॥ २१ ॥ एतेन धर्मेण ऋता-वृतौ संनिपातयेत् ॥ २२ ॥ इति वाराहगृह्ये अष्टादशः खण्डः ॥

अब वधू के गृहप्रवेश की रीति दिखाते हैं। ठीक सन्ध्या के समय रथ से उतार के बहूको घरमें लावे "प्रतिब्रह्मन०" मंत्र को पढ़के यजमान बहू को रथ से उतारे ॥ उस समय दही चन्दनादि मंगल वस्तु कोई घरमें से लावे और मङ्गल सूचक मन्त्रादि का उच्चारण घर में हो ॥ रथ से लेकर घर के भीतर तक पूर्वको अग्र भाग कर २ बराबर निरन्तर कुश बिछावे और अध्वर्यु "येष्वध्येति प्र०" मंत्र को पढता हुआ उन बिछाये कुशों पर बहू को घरमें ले चले ॥ फिर "गृहानहं सुमनसः०" मन्त्र को पढ़ते हुए एक जल भरा पात्र, धान की खीलें आदि और विवाह के अग्नि को साथ लिए हुए घरमें प्रवेश करे । प्रवेश के समय रोहिणी या मूल नक्षत्र हो । या ज्योतिः-शास्त्रानुकूल मुहूर्त्त हो ॥ प्रथम से बनाये कुण्ड में अग्निस्थापन करके उस अग्नि से पश्चिम में लाल बैल का चर्म पूर्व को शिर और ऊपर को लोम रख के बिछावे, उस पर दाभ बिछाके उनपर या बैल का चर्म न मिले तो बिछाये हुए केवल दाभों पर बहू को बैठावे ॥ फिर "सोमेनादित्या०" मन्त्र पढ़के मृग चर्मादि धारण किये किसी ब्रह्मचारी को इसी बहू के गोद में बैठावे ॥ तब कोई फल जिनमें मिले हों ऐसे तिल और चावलों से ब्रह्मचारी की अञ्जुली भर कर बहू की गोदी से उठा देवे ॥ इसके अनन्तर ध्रुव, अरुन्धती, जीवन्ती और सप्तऋषि इन नक्षत्रों को बहू को दिखा वे ॥

सप्तऋषियों के बीच की तारा जीवन्ती कहाती है ॥ वह बहू जब ध्रुवादि को देखती हो तब वर "अच्युता ध्रुवा०" इत्यादि मंत्र का जप करे ॥ फिर अगले दिन प्रातःकाल प्रजापति देवता के लिये दूध में पूर्व कहे अनुसार स्थाली पाक पकाके उससे "प्रजापतयेस्वाहा०" मन्त्र द्वारा प्रजापति के लिये तूष्णी प्रधान होम करे ॥ फिर शेष बचे घी में दही मिलाकर इस दही के साथ शेष बचे स्थालीपाक को "चक्रीवानडुहौ०" मन्त्र पढके यजमान तीन बार खावे और शेष बचे को पत्नी बिना मन्त्र तीन बार खावे। फिर उसी दिन दोपहर के पश्चात् श्रौतसूत्र में कहे अनुसार पिण्ड पितृयज्ञ करे ॥ विवाह विधि हो जाने पर स्त्री पुरुष दोनों एक वर्ष या बारह दिन या तीन दिन या एक दिन तक ब्रह्मचारी (मैथुन न करें) रहें ॥ इसी अवसर में घर के काम काज धन के लेन देन आदि का अधिकार पत्नी को देवे ॥ ब्रह्मचर्य्य की समाप्ति में पूर्वोक्त मंत्र से पत्नी की कटि में बान्धी मेखला को खोलकर वक्ष्यमाण रीति से दोनों समागम करें। समागम से पहिले "अपश्य त्वा मनसा" मन्त्र को पति को देखती हुई पत्नी पढ़े फिर "अपश्यं त्वा मनसा०" मंत्र को पत्नी के तरफ देखता हुआ पति पढ़े, फिर प्रजापतिस्तन्वं०" मन्त्र को पत्नी पढ़े ॥ और अहंगर्भ मद०" मन्त्र को पति पढ़े ॥ फिर "करत" ऐसा कहकर पुरुष पत्नी के उपस्थेन्द्रिय का स्पर्श करे। "जननी" ऐसा कहकर अपने उपस्थेन्द्रिय का स्पर्श करे ॥ "बृहत्" कहकर दोनों के संयोग के अन्त में गर्भाशय का स्पर्श करे ॥ इसी रीति से प्रत्येक ऋतु काल में दोनों समागम किया करें ॥ सू० १-२२ ॥ यह अठारहवां खण्ड पूरा हुआ ॥ १८ ॥

अथाऽस्यास्तृतीये गर्भमासे पुंसा नक्षत्रेण यदहश्चन्द्रमा न दृश्यते तदहर्वोपोष्याप्लाव्याहतं वास आच्छाद्य न्यग्रोधावरोहशुङ्गान् उदपेषं दक्षिणस्मिन्नासिकाच्छिद्रे आसिञ्चेत् ॥ १ ॥ हिरण्यगर्भोऽद्भ्यः संभूतः॥ इत्येताभ्यां ॥ २ ॥ अथाऽस्या दक्षिणं कुक्षिमभिमृशेत्—"पुमानग्निः

त्यनुषजेत् ॥ ५ ॥ नम इत्यन्ते च ये ब्राह्मणाः प्राच्यां दिश्यर्हन्तु ये देवा यानि भूतानि प्रपद्ये तानि मे स्वस्त्ययनं कुर्वन्त्विति" दक्षिणस्यां प्रतीच्यां उत्तरस्यामूर्ध्वायां "ये ब्राह्मणा" इति सर्वत्रानुषजेत् ॥६॥ स्नेहवदमांसमन्नं भोजयित्वा विदिशो ब्राह्मणानर्थसिद्धं वाचयेत् ॥ ७ ॥ बलिहरणस्यांते यामाशिषमिच्छेत् तामासीत ॥ ८ ॥ गृहपतिः ॐअक्षयमन्नमस्त्वित्याह ॥ ९ ॥ भिक्षां प्रदाय सायं भोजनमेव प्रातराशेत् ॥१०॥ विप्रोष्य गृहानुपतिष्ठेत् ॥ ११ ॥ इति वाराहगृह्ये वैश्वदैविकः खण्डः ॥

विश्वे देवों के उद्देश्य से पकाया अन्न वैश्वदेव कहाता है। उस अन्न से गृहस्थ सायं प्रातः काल बलि कर्म करे ॥ इन पञ्च महायज्ञों में यहां पहिले देव यज्ञ दिखलाते हैं ॥ १ अग्नि, २ सोम, ३ धन्वन्तरि ४ विश्वेदेव, ५ प्रजापति और "अग्निस्विष्टकृत्' इन छः देवताओं के लिये "अग्नये स्वाहा०" इत्यादि प्रकार छः आहुति हविष्यान्न की अग्नि में देवे ॥ अब भूतयज्ञ कहते हैं—अग्नये नमः, सोमायनमः, इत्यादि मन्त्रों से अग्निस्थान यज्ञशाला में उत्तर २ को छः ग्रास धरे "अद्भ्यो नमः" जलभरे मटका के पास "ओषधिभ्यो नमः" से ओषधियों के पास वनस्पतिभ्यो नमः" से बीच के खम्भे के पास "गृह्याभ्यो देवताभ्यो नमः" से घर के बीच "धर्मायाधर्माय नमः" से द्वारपर "मृत्यवकाशाय नमः" से आकाश में बलि फेके। "अन्तगोष्ठायनमः से गोशाला के भीतर' 'बलिवैश्रवणाय नमः से घरके बाहर पूर्व में "विश्वेभ्यो देवेभ्यो नमः" से घरके बीच में। इन्द्राय नमः, इन्द्र पुरुषेभ्यो नमः" से घर से पूर्व में "यमाय नमः यमपुरुषायनमः" से घर से दक्षिण भाग में एक बलिधरे। वरुणाय नमः। वरुणपुरुषेभ्यो नमः" से घर से पश्चिम भाग में। "सोमाय नमः। सोमपुरुषेभ्यो नमः" से घर के उत्तर भाग में। ब्रह्मणे नमः। ब्रह्म पुरुषेभ्यो नमः। घरके मध्य भागमें। आपा-

तिकेभ्यो नमः" इत्यादि वाक्यों से ग्यारह बलि पूर्व में धरे। दिवाचारिभ्यो भूतेभ्यो नमः" से दिनमें "नक्तंचारिभ्यो भूतेभ्यो नमः" से रात में एक २ बलि बीच में धरे। "धन्वन्तरये नमः" से एक बलि धन्वन्तरि की तृप्ति के लिये धरे, जितना बलिकर्म के लिये अन्न लिया था उसमें से शेष बचे अन्न में थोड़ा जल मिलाके अपसव्य दक्षिणाभिमुख हो घर से दक्षिण में "पितृभ्यः स्वधा" कहकर एक बलि भूमि पर धरे॥ फिर यथा विधि अतिथि को भोजन कराके शेष बचे अन्न को पति पत्नी खावें॥ पितरों के लिये जो एक बलि है वही पितृयज्ञ कहाता है। यह वैश्वदेविक खण्ड पूरा हुआ॥

अतः परं परिशिष्टं मैत्रायणीयसूत्रस्य गृह्यमगृह्य-पुरुषः प्रायश्चित्तानुग्रहिक-हौतृक-शुल्विक-उत्तरेष्टिक वैष्णव-आध्वर्यविकार्षक-चातुर्होतृक गोनामिक-अकुल-पादरहस्य-प्रतिग्रहयमक-वृषोत्सर्ग-प्रश्न-द्रविण--षट्कार-ण-प्रधान--सान्देहिक-प्रवराध्याय--रुद्रविधान--छन्दोनु-क्रमणी--अन्तःकल्प-प्रवासविधि-प्रातरुपस्थान-भूतोत्पत्ति-रिति द्वाविंशतिः परिशिष्टसंख्यानाम् ॥ १ ॥

इसके अनन्तर मैत्रायणीय गृह्यशाखा के (वाराह गृह्यसूत्र के परिशिष्ट को कहते हैं) परिशिष्ट के विषयों की २२ संख्या है, जैसे—गृह्य अगृह्य पुरुषः प्रायश्चित्तानुग्रहिक हौतृक, शुल्विक, उत्तरेष्टिक, वैष्णव, आध्वर्य विकार्षक, चातुर्होतृक, गोनामिक, अकुल पाद रहस्य, प्रतिग्रह यमक, वृषोत्सर्ग, प्रश्न, द्रविण, षट्कारण, प्रधान, सान्देहिक, प्रवराध्याय, रुद्रविधान, छन्दोनुक्रमण, अन्तःकल्प, प्रवासविधि, प्रातरुपस्थान, और भूतोत्पत्ति॥

गृह्याग्नौ पाकयज्ञान् विहरेत् ॥१॥ ह्रस्वत्वात् ॥२॥ पाकयज्ञो ह्रस्वं हि पाक इत्याचक्षते ॥ ३ ॥ दर्शपूर्णमास-

प्रकृतिः पाकयज्ञविधिः अप्रयाजानुयाजोऽसामिधेनिकः स्वाहाकारान्ते निगद्य होमाः परतंत्रोत्पत्तिर्दक्षिणाग्नावाहिताग्निः गोमयेन गोचर्ममात्रं चतुरश्रं वा स्थंडिलमुपलिप्येषुमात्रं तस्मिन् लक्षणं कुर्वीत "सत्यसदसी"ति पश्चार्धादुदीचीं लेखां लिखेत् ॥ ४॥ "ऋतसदसी"ति दक्षिणार्धात् प्राचीं घर्मसदसीत्युत्तरार्धात् प्राचीं मध्ये द्वे तिस्रो वा प्राचीः ॥५॥ "ऊर्जस्वती"ति दक्षिणाम् ॥६॥ "पयस्वती"त्युत्तराम्। "इंद्राय स्वेति" मध्याद्वा सर्वाः प्रादेशमात्र्यः दर्भेणावलिखेत् ॥ ८ ॥ अद्भिः प्रोक्ष्याग्निं सादयति ॥ ९॥ परिसमुह्य पर्युक्ष्य परिस्तीर्य तूष्णीमिध्माबर्हिस्सन्नह्य प्रागग्रैर्दक्षिणारंभैः उदक्संस्थैः अयुग्मैर्धातुभिस्तृणाति ॥१०॥ दक्षिणतोऽग्नेः ब्राह्मणमुपवेश्योत्तरतः उदक्पात्रं बर्हिषः पवित्रे कुरुते ॥ ११ ॥ समिधावप्रच्छिन्नप्रान्तौ दर्भौ प्रादेशमात्रौ "पवित्रे स्थो वैष्णव्य" इत्योषध्या छित्वा "विष्णोर्मनसा पूते स्थ" इत्यद्भिः त्रिरुन्मृज्य प्रोक्षणीधर्मैः संस्कृत्य प्रणीताः प्रणीय निर्वपणप्रोक्षणसंवपनमिति यथादैवतं चरुमधिश्रित्य स्रुक्स्रुवौ प्रमृज्याभ्युक्ष्य अग्नौ प्रताप्य अद्भिरासिच्य अच्छिन्नपात्रेत्याज्यमग्नौ अधिश्रयति॥१२॥ पृश्नेः पयोऽसी"ति आज्यं निर्वपति ॥ १३ ॥ परि वाजपतिरित्याज्यं हविश्च त्रिः पर्यग्नि करोति ॥ १४ ॥ देवस्त्वा सवितोत्पुनात्वि"त्याज्यं अपयति ॥ १५ ॥ तूष्णीमिध्मा बर्हिः प्रोक्ष्य यथाम्नातमभि परिस्तृणाति ॥ १६ ॥

परिधीन् परिदधाति ॥ १७ ॥ ओजसी" त्याज्यमवेक्ष्य पश्चादग्नेः दर्भेष्वासादयति ॥ १८ ॥ अभिघार्य स्थालीपाकमुत्तरत उद्वासयति ॥ १९ ॥ सकृदेवेध्ममादाय विरूपाक्षः प्रथमो होमानां ब्राह्मणमामन्त्र्य समिधमादायाघारावाघार्याज्यभागौ हुत्वा "युनज्मि त्वे"ति च योजयित्वा नक्षत्रि ॥ २० ॥ "युक्तो वह" इति हविर्ज्ञायते ॥ २१ ॥ कामं पुरस्ताद्धुरोजुहोति "युक्तो वह जातवेदः पुरस्तादिदं विधिक्रियमाणं यथेह त्वं भिषग्भेषजस्यासि गोप्ता त्वया प्रसूता गामश्वं पुरुषं सनेमि स्वाहे"ति ॥ २२ ॥ विश्वाग्ने त्वया वयं धारा उदन्या इव ॥ अति गाहेमहि द्विष"मिति नक्षत्रमिष्ट्वा देवतां यजेत ॥ २३ ॥ अहोरात्रमृतुं तिथिं च अभिघार्य यद्देवतं हविः स्यात् तज्जुहुयाद्यथादेवतम् ॥ २४ ॥ यथा देवतया वर्चा आकूताय स्वाहेति जयान् जुहुयात् ॥२५॥ प्रजापतिः प्रायच्छदिडामग्ने" इति स्विष्टकृतमुत्तरार्धपूर्वार्धे जुहुयात् ॥ २६ ॥ मेक्षणमुपधामं पवित्रे चान्वादध्यात् "अन्वयनो अनुमतिरन्विदनुमते त्वं भूःस्वाहे"ति प्रायश्चित्ताहुतीश्च ॥ २७ ॥ त्वं नो अग्ने स त्वं नो अग्ने मनो ज्योतिः त्रयस्त्रिंशत्तन्तवः अयाश्चाग्नेऽसीति" च । इमं स्तनं मधुमन्तं धयाय प्रपीनमग्ने सलिलमध्ये। उत्संजिषस्व मधुमन्तपूर्वी समुद्र्‌यं सदनमाविवेश स्वाहे"ति परिधिविमोकमभिजुहोति ॥ २८ ॥ "अन्नपत" इत्यन्नस्य जुहुयात् ॥ २९ ॥ "एधोस्येधिषीमहि स्वाहेति"

समिधमादधाति ॥ ३० ॥ "समिदसि समेधिषी" महीति द्वितीयाम् ॥ ३१ ॥ बर्हिषि पूर्णपात्रं निनयेत् । एषोऽवभृथः पाकयज्ञानाम् ॥ ३२ ॥ आपोहिष्ठीयाभिर्मार्जयित्वा पर्युक्षेत ॥३३॥ वरो दक्षिणा ॥३४॥ अश्वं वरं विद्याद्गामन्त्येके ॥३५॥ इतिवाराहगृह्ये प्रथमः खण्डः संपूर्णः ॥

॥ इति वाराहगृह्यमेकविंशतिखण्डैः समाप्तम् ॥

पाकयज्ञ छोटे २ होते हैं, इस लिये इनके लिये दूसरे अग्नि के आधान की आवश्यकता नहीं, गृह्य अग्नि ही में पाकयज्ञों को सम्पादन करे । दर्श और पौर्णमास (यज्ञ) की प्रकृति पाक-यज्ञविधि है अप्रयाज, अनुयाज, और असामधनि के मन्त्रों में "स्वाहा" को जोड़कर निगद (वाक्य) से होम करे, यह बात दूसरे गृह्यसूत्रों से लियी गई है । दक्षिणाग्नि में आहिताग्नि व्यक्ति गौचर्म मात्र भूमि चौकोण या वेदी को गौके गोबर से लीपकर उसपर धनुष की बराबर सत्यसदसि मंत्र से इस प्रकार रेखा खींचे कि पश्चिम भाग आधे में उत्तर को रेखा खींचे । और "ऋतसदसि०" मं. से दक्षिण आधे में पश्चिम को रेखा खींचे । "धर्म सदसि०" मं. से उत्तर के आधे भागमें पूर्व की ओर रेखा खींचे । दो या तीन रेखा पूर्व की ओर "ऊर्जस्वति" मं. से दक्षिण को रेखा खींचे । "पयस्वति०" मंत्र से उत्तर की ओर रेखा खींचे । या "इन्द्रायत्वा०" मन्त्र से बीच से विलस्तभर (प्रादेश परिमाण) सारी रेखाओं को कुश से खींचे । और जल से छींटा देकर अग्निके पास प्रयोजनीय पदार्थों को रक्खे । वेदी को साफ कर जल सींचे और अग्निके चारो ओर कुशाओं को बिछाकर विना मंत्र समिधा, और बर्हिको पास में रख के पूर्वाग्र कुशाओं को दक्षिण भाग से आरम्भ कर उत्तर को रख के वे जोड धातुओं को बिछावे और अग्नि के दक्षिण भाग में ब्राह्मण को

बैठाकर उत्तर भाग में जलपात्र को और बर्हि कुशाको पवित्रे बनावे। जिनके अग्रभाग टूटे न हों ऐसे दो कुशाओं (प्रादेशपरिमाण के) "पवित्रे स्थो वैष्णव्य०" मंत्र से कुशा को काट कर "विष्णोमर्नसापूतेस्थ०" मंत्र से जल से तीन वार मार्जन कर प्रोक्षणी से संस्कार कर प्रणीता से प्रणयन कर निर्वपण, प्रोक्षण, संवपन" कर्म को यथा दैवत चरु को अग्नि पर चढाकर स्रुक और स्रुवा को मार्जन कर उसपर जल छिड़क कर अग्नि में तपाकर जल से सींचकर "अच्छिन्न पत्र" मंत्र से अग्नि में तपावे। "पृश्निःपयोसि" मंत्र से आज्य से निर्वापकरे। "परिवाजपतिः" मंत्र से आज्य और हवि को तीन वार अंगारे" को अग्नि के चारो ओर भ्रमण करावे। "देवस्तव" इत्यादि मंत्र से आज्य को आगपर चढ़ावे। और विना मंत्र बर्हिः कुश को प्रोक्षण कर यथा विधि अग्नि के चारो ओर बिछावे और परिधिको परिधान करे। "ओजोसि" मंत्र से आज्य को देखकर अग्नि के पश्चिमभागमें कुशों पर रक्खे। और अग्नि में घी का ढार देकर स्थाली पाक के उत्तर में छोड़ देवे। और एक ही वार में इध्म को लेकर विरूपाक्ष नामक प्रथम होम, ब्राह्मण को आमन्त्रण कर समिधा लेकर घी का दो ढार देकर आज्यभाग की दो आहुतियां देकर "युनज्मित्वा०" मंत्र जोड़कर आरम्भ करे। "युक्तो वह०" से हविः का ज्ञान होता है। तब इच्छानुसार पहिले धुरको हवन करे। फिर "युक्तोवह०" इत्यादि मंत्रों से नक्षत्र की पूजा कर देवता की पूजा करे। अहोरात्र को, तिथिको आज्य का ढार देकर जिस देवता के निमित्त हविः हो उनके नाम तथा उनके मंत्र से हवन करे। "आकूताय०" मंत्र से स्विष्टकृत् की आहुति उत्तरार्ध पूर्वार्ध भाग में देवे। दर्वी, उपग्राम, पवित्रे इनको अग्नि में डाले। "अन्वधनो०" इत्यादि मंत्र से और "इमं स्तनं०" मंत्र से परिधि को त्याग करते समय हवन करे। "अन्नपते०" मंत्र से अन्नको हवन करे। "एधासि" मंत्र से समिधा की आहुति करे। "समिदसि०" मंत्र से दूसरी समित की आहुति करे और बर्हिषि तथा पूर्णपात्र को भी अग्नि में डाले। यह कर्म पाक यज्ञों का अव-

भृथ है। फिर "आपोहिष्ठा०" मंत्र से मार्जन कर जल से सींचे। और ब्राह्मणों को दक्षिणा देवे॥ कोई २ आचार्य दक्षिणा में घोड़ा, या गौ देना बताते हैं॥ इति ठाकुर-उदयनारायण सिंह कृत भाषानुवाद सहित वाराह गृह्यसूत्र २१ खण्डों में पूरा हुआ।

वाराहगृह्यसूत्र का प्रथम खण्ड पूरा हुआ॥
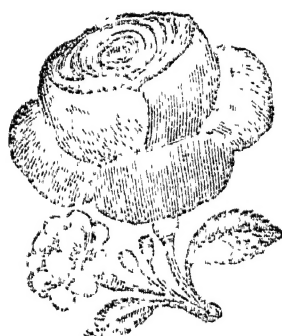
पुस्तक प्राप्तिस्थानम्:—

ठा. उदयनारायणसिंह

शास्त्रप्रकाश भवन;

मधुरापुर, विद्दूपुर बाजार (मुजफ्फरपुर)।

वाराहगृह्यसूत्र का शुद्धिपत्र ।
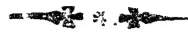
पृष्ठ संख्या	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१	८	दाक्षणे	दक्षिणे
७	१	दक्षणतो	दक्षिणतो
९	२६	आद्दिंशात्	आद्वाविंशात्
१३	१४	अतस्य	श्रुतस्य
१४	१२	सयय	समय
१४	२०	पहिले का	पहिले ही
१६	९	देवे देना	देना चाहिये
२४	१७	सयम	समय
२८	२	बिबाह	विवाह:
२९	५	हा	हो
३३	७	हत	हत:
३३	१६	स र्स्मादलं	सर्वस्मादलं
३६	४	धाती	धोती
४०	८	गाधां	गाथां
४१	६	अग्नि	अग्नि के
४१	१३	कुछ	कुश
४१	१८	,,	,,
४१	१९	,,	,,
४१	२०	,,	,,
४८	१०	कटे	कूटे
५१	२५	ता	तो
५५	१६	अंहंगर्भ	अहंगर्भ
५७	१५	वैश्वदेव	वैश्वदेव:
५८	३	सूर्ध्वायां	मूर्ध्वायां
५९	२०	गानामिक	गोनामिक
६२	४	विद्यादूगाम-	विद्यादूगासि-